लोकलाज

(एक पारिवारिक उपन्यास)

लेखक

जयप्रकाश

सत्य प्रिंटिंग प्रेस

२ शिवनगर करौलबाग, नई दिल्ली-५

मूल्य सात रुपये

अन्यतम श्रद्धा के साथ

जीजी कुसुम को

और

प्रस्तुत उपन्यास में बुनियाद का पत्थर

जुटाने के श्रेय में सस्नेह

सुधा को

: १ :

अभी अन्धेरा नहीं हुआ था।

किन्तु इसके बावजूद भी रेखा के सामने गहन कालिमा पसर रही थी। दिन के तारे देखने का सौभाग्य भले ही उसे न मिला हो, किन्तु जो वह देख रही थी—वह क्या किसी नारकीय यातना से कम था।

सुसराल—व्याह, शादी, लग्न, भोज और दहेज के बाद वह जिस जीवन को वह भोग रही थी उसे क्या कहा जाय! सुसराल या नरक?

किन्तु शायद इसके लिये सही शब्द होगा—पिंजड़ा।

वास्तव में वह एक पिंजड़े की पक्षिणी ही थी। जिसे बिराने देश में पत्थर हृदय जैसे व्यक्तियों का साथ कर दिया गया था।

महामाया सास हैं—कटु हैं, क्यों! यह न जानने पर भी वह सब सह लेना पसन्द करती थी।

हरिकुमार पति हैं—कौन जाने इस कलियुग में कितनी लड़कियां अपनी टीस बखेर कर चली गई होंगी और अब न जाने किन २ हूर परियों के कारण उन्हें रात के तारे गिनने पड़ते हैं। अगर वे पसन्द नहीं करते—तो यह उसका काम है कि संघर्ष करके और हिन्दुस्तानी लड़किमों की तरह उन पर काबू करने की कोशिश करे।

मगर शरद्, रिशते से उसका भानजा, उम्र के नाम पर एक छोटा सा बच्चा और मचलता इस तरह है जैसे आगे पिछले मरे तमाम पुरखों का पुरुषत्व बटोर रक्खा हो।

बराबर वाले कमरे में उसके छोटे छोटे हाथ मशीन की तरह तकिये को नोच रहे थे। आंखों में रोष था और हाथों में तकिया। महामाया प्रवेश कर चुकी थी किन्तु आंखें उठें तब न। उसने एक क्षण प्रतीक्षा की फिर तकिया छीन कर जोर से कान गरम करके कहा—'वाह, बहुत बढ़िया काम कर रहा है। अरे बना नहीं सकता तो बिगाड़ कर ही अपने को अफलातून समझ रहा है। बिल्कुल ही तो नीलू पर गया है। वह क्या कम थी, जब तक जिन्दा रही छाती पर मूंग दलती रही और अब तू है कि''''किन्तु शरत् ने नहीं सुना। नीलिमा कभी उसकी मां रही होगी उसे याद नहीं। वह महामाया की सौतेली बेटी—यानी महामाया के पति की पहली स्त्री की इकलौती लड़की थी और कभी भी महामाया से न्याय नहीं कर सकी!

क्योंकि उसने खुद वर तलाश किया था और अपनी मां का पाई २ जेवर वसूला था इसलिये उसका कोप कभी कभी शरत् पर उतरता था।

एक चांटा और दोनों कान अच्छी तरह मसलवा लेने के बाद मौन व्रत लेकर दूसरे कमरे में गया, जिससे अगले कमरे में ही रेखा चुपचाप उस ब्यूटी बाक्स की ओर देख रही थी। जिसकी लिपिस्टक से अपनी किताब रंग लेने के बाद शरत् नाराज हो गया था। कितनी अजीब बात है अगर हरिकुमार देख लें तो जान को आ जायें और अगर उसे बहलाने का प्रयत्न किया जाय तो कोहराम मच जाय। यही तो है पराधीनता! वह चुपचाप अस्त होते हुए सूरज को देख रही थी, जिसका लालिमा उसके फ्लेट पर, आंगन पर, पेड़ों पर और दूर तक फैली हरियाली पर, फूलों की लदपद क्यारियों पर बहुत ही अल्हड़ता से तिरछी बांकी पड़ रही थी।

किन्तु उसके कान थे अलार्म की आवाज पर! जैसे ही पुनरावृत्ति हुई वह दौड़ कर दूसरे कमरे में पहुंच गई। जब तक महामाया वहां

से गुजरी शरत् उसकी गोद में मुंह छिपाये रो रहा था। महामाया को जैसे यह सुलह, यह समझौता, यह प्रेम अच्छा नहीं लगा या जब्त नहीं हुआ। वह पुनः उसी कमरे में आ गईं जहां तकिये से रूई निकली पड़ी थी और ऊपर नीलिमा का चित्र लटका हुआ था।

एक बहुत ही भोली, कुछ सुन्दर और दृढ़ लड़की का जिक्र जिसने जिद से शादी की — अपना वर तलाश किया और जब पति श्यामकृष्ण का शराब पीना सहन नहीं कर पाई तो आत्महत्या करके मर गई। श्यामकृष्ण सरकारी गजेटिड न सही अच्छी खासी तनख्वाह के नौकर थे। उनका फ्लेट अब सहारनपुर से आयी महामाया और हरिकुमार के काम आ रहा था, उन्होंने ही हरिकुमार को नौकरी दिलवाई थी और साथ साथ महामाया के ऊपर शरत् का भरण पोषण का भार आ पड़ा था।

महामाया चित्र देखती रही और फिर सोचती रही अजीब अजीब बातें। हरिकुमार मैट्रिक ही सही, हैं तो सरकारी नौकर। लगी बंधी नौकरी और फिर साहरनपुर से हर माह पैंतीस रुपये का किराया। यह सोच कर उन्होंने अन्दाजा लगाया था कि और कुछ नहीं कम से कम कार नहीं तो मोटर साइकल, कोठी नहीं तो मकान और तीस नहीं तो बीस हजार का दान तो जरूर मिलेगा ही! किन्तु क्या मिला— एक बहू, तीन हजार नकद और इतना ही कपड़ा लत्ता! दान को देखा काठ हो गई, बहू को देखा तोबड़ा सुजा लिया। खूब हाथ नचा नचा कर बहू को लज्जित किया, देखा सर ताने कसे और फिर अपने कमरे में बिछे तख्त पर जाकर सिर पटक दिया। इसी कमरे की आलमारियों में दहेज का सामान सजा है—इसे देख कर उनके तन में तो आग लग हीं जाती है—कभी कभी दिमाग में उठता है कि इस बहू को···यानी इस बहू का क्या हो?

अन्धेरा गहरा हो रहा था, कि बाहर से भोला ने पुकारा—

'बीबी जी, जो है सो...'

'जो है सो' बड़बड़ाती हुई वे बाहर आई तो नौकर ने सूचित किया, 'जो है सो माधो आया है।'

'माधो—कौन तेरा बहनोई !'

'नाहीं' भोला ने कहा—'बो है माधव। हम कह रहे हैं लखनऊ से माधो आये हैं, समझी नाहीं, अरे बाबू के ससुराल से।'

'वाह—'एक विराम के बाद महामाया ने कहा, 'मैं क्या उस पर पानी ढोलूंगी—बहू सुनती है।' रेखा ने सुना माधो आया है, कुछ दिन के लिये कुछ नहीं तो यह कैद तो कम होगी। वह सामने आकर बोली—'तो अम्मा जी....'तो क्या री, तेरे भाई की जगह है। अगर भाई आता तो भी तो अगवानी करती। क्या मां बाप ने पानी ढोलना भी नहीं सिखाया।'

रेखा ने गाली पीकर जवाब दिया, 'नहीं सिखाया तो सीख लूंगी अम्मा जी, मैं तो सोचती थी कि शायद दिल्ली वालों की कुछ और बात हो और मुझे तो यहां की रस्म निभानी है।'

'वाह—यहां की रस्म निभानी है। अरी मेरा मुंह क्या ताकती है जाती क्यों नहीं।' कह कर वह तेजी से रसोई घर की तरफ मुड़ी।

: २ :

सचमुच माधो आया था—बहुत ही पुराना, विश्वस्त और बहुत ही स्वामिभक्त सेवक ! उसने आते ही महामाया के पांव छुए और फिर पूछा—'कोई और हो तो बता, क्या नाम। हम उनके पांव छू ल। राम जुहार कर लें। मालकिन कह रही थी कोई कमी न आवे।'

'वाह—'महामाया कोई कटु बात कहना चाहती थी, किन्तु चुप रही। मगर ओंठ बता रहे थे कि उसने कोई बात पी जरूर है। रेखा

से बोली—'तो अब इसके खाने का क्या होगा ? कोई चिट्ठी नहीं, पत्री नहीं। धड़ाम से आ पड़े।'

'हम बतायें, क्या नाम।'

'तू क्या बतायेगा, जो है सो'—भोला ने माधो को डांटते हुए कहा—'बीबी जी, जो है सो सोहल और पपड़ी बेकार थोड़े ही जायेंगी !'

'हां यह ठीक है'—महामाया ने बचाव का साधन निकलता देख हांजी भरी। रेखा का मन रो रहा था कि उसके घर का एक आदमी आया है और उसे बीस दिन की बासीं सोहल और पपड़ी मिलेंगी।

माधो ने कहा—'क्या नाम, हमारी भी तो बात सुनो ! हम लाये हैं टेटे में बांध के। खा लेंगे और सो रहेंगे। एक दिन ही की तो बात है।'

महामाया ने पूछा—'क्या खाने को भी मालकिन ने मना कर दिया है।'

उसने उत्तर दिया, 'नाहीं, हम, क्या नाम है ? रेखा को समझते हैं छोटी बहिन तो भला कोई छोटी बहिन के यहां खाता है। मालकिन ने खूब रेंट में बांध दिया है। चार छः दिन तो शायद पार हो ही जायें।'

'वाह—'

रेखा को लगा जैसे महामाया सास, मां औरत न होकर सिर्फ 'वाह' है। विधवा होने के नाते जरूर मांग नहीं भरतीं, लिपिस्टिक नहीं लगातीं—किन्तु फिर भी वे क्या काम दुनिया से अलग करती हैं। रेखा के जेवर घिसने के डर से उतरवा लिये किन्तु अब भी हाथों में सोने की चूड़ियां झनझनाती हैं ? तख्त सिर्फ माला फेरते वक्त ही इस्तेमाल ही करती हैं।

जब वह माधो को खाना खाते देख रही थी तो माधो ने पूछा—'ओह रेखे, मन लगा कि नाहीं।'

'लग जायेगा !'

उसने पूछा—'वैसे रखती तो सास रानी ठीक से है ना।'

'क्यों नहीं रखेंगी।'

'और है कैसी—क्या नाम, हम पूछ रहे थे बहना, स्वभाव....'

'स्वभाव—'रेखा के चौड़े माथे पर दो बल पड़े और मिट गये।' रेखा ने कुछ क्रोध से कहा—कैसी बात करते हो माधो—कोई लाज-बाज नहीं लगती !'

माधो कुछ कहने ही जा रहा था कि बाहर से किसी ने पुकारा 'भाभी।'

बहुत ही, प्रदु, बहुत ही संतुलित—पुकार—'यहां हो, भाभी।'

'कौन निशि.......'

'नहीं' एक बहुत ही सुकुमार लड़की ने आकर उसकी आंखें मीचते हुये कहा—'इतनी आसानी से चाची के कमरे को पार करने की ताव भला मेरे सिवाय और किसी में है।'

''यह तो मैं जानती थी कि सिवाय निशि के कोई और भला मुझे इतने प्यार से कैसे पुकारेगा।' कहकर रेखा माधो की ओर मुड़ी—'हां भैया, पानो तो मां ने साथ नहीं भेजा है।'

'क्या नाम पानी।' जैसे उसे कुछ याद आया हो, भोला को बुला उसके हाथ पर दो आने पैसे और अपना लोटा रख कर बोला—'दौड़ा चला जा, और भर ला इसे।

'कहां लखनऊ से, जो है सो !'

'जो है सो' माधो ने उसके हाथ पर दो आने और रख कर कहा—'ले अब तो मिलेगा ना पानी.......'

भोला खीं-खीं हंसता हुआ चला गया।' निशि ने रेखा के गले में बाहें डालकर माधो के सामने उसका मुंह चूम लिया, माधो को कुछ अखरा जरूर। मगर नौकर की भी तो सीमायें होती हैं, वह देख सकता था कि निशि एक सुन्दर किन्तु बदतमीज लड़की है। वह देख सकता था कि रेखा की मुस्कान निखार के बदले मिट चुकी है, किन्तु बोलना उसके अधिकार से बाहर की चीज थी।

निशि ने फरमाइश की, 'भाभी, अरी अपना लिपिस्टिक तो दो।

'लिपिस्टिक........'

उसने पुनः उसे चूमा! झिंझोड़ कर बोली—'अरे कंजूस मत बनो। भाभी से पूछ आई हूं—जरा दो तो।' रेखा कुछ सहम सी गई। दो तीन रोज के आवास ने उसे बहुत कुछ सिखा दिया था। किसी बात की फरमाइश महामाया से करो, वह कह देंगी, 'अब तो बहू आयेगी—हमें कौन पूछता है!'

बहू को तो इससे पहले आदेश था, यह है परदेश। गुजारा करना है बारात नहीं लगानी! समझी......लोगों की तो आदत होती है झींकने की, कब तक मना करें।

फिर भी रेखा 'ना' न कर सकी। उसे लिपिस्टिक देनी पड़ी, जिसे अच्छी तरह लगा लेने के बाद निशि ने कहा—'आ जाने दो भाई साहब को। यह भी कोई मजाक है कि आप जनाब आगरे में मजे करें और भाभी यहां वियोग का घड़ियां गिने। देखें तो कैसी सूरत हो गई है, भाभी तुमको यह अच्छा लगता है।'

गाल पर हाथ रख कर निशि ने कहा—ओह मेरे भगवान कोई बुराई नहीं। भाभी अगर तुम ही ऐसे रहोगी तो औरों का क्या होगा? लाओ मैं तुम्हारा मेकप कर दूं।

'छीं !'

'छी कैसी, भाई। सहाब के न होने से तुम भिखारिन बनी रहोगी।'

जाने कैसे रेखा कह गई 'सूरज न हो कमलनी कभी खिलती है--और फिर.......'

'और फिर क्या--'

'देखती नहीं माधो आये हैं। इनके सामने क्या सिंगार पटार अच्छा लगेगा।'

'ओह--बहुत ही उपेक्षित भाव से निशि ने कहा--'कैसी बात करती हो ; भाभी। नौकरों से ओह इतना डर--' कुछ और कहे इससे पूर्व ही रेखा ने उसके मुंह पर अंगुली रखकर चुप रहने का आदेश दिया।

इधर भोला ने लोटा लाकर कहा, 'जो है सो, लखनऊ वाले बड़े चालाक। एक दम चलती रकम। अमृत जैसा पानी कौड़ियों के मोल खरीद लिया।'

'क्या नाम--तो और क्या चाहिये।'

'चाहिये क्या ?' भोला बोला--'जो है सो !

'अरे कुछ होता। दिल्ली का लड्डू, मथुरा का पेड़ा--

कलकत्ते के रसगुल्ले और बम्बई की गुलाब जामुन।

जो है सो, पकड़ा दी ठूंठ सी बवली।'

'क्या नाम है ?' माधो ने कहा 'तो तुझे ठूंठ दिखाई देती है यह।'

'बिल्कुल, जो है सो।'

पानी पीकर माधो ने भोला का हाथ पकड़ा और बाजार में हलवाई की दुकान पर बिठला कर बोला कि तुलवाते जाओ और खाते जाओ।'

उसने एक पाव रबड़ी ली और खाकर बोला—'जो है सो हो गये ताजिये ठण्डे।'

'ना ही और ले लो—क्या नाम है। हलवाई जी—' उसने पाव पेड़े तुला कर खाये। उसके बाद पानी पीकर बोला—'वाह भई वाह, जो है सो।'

'तो क्या आप और नाहीं लोगे।'

'बस और क्या, जो है सो' —

'जो हो गये ताजिये ठण्डे—'

भोला बोला, 'सो बात नहीं।' अरे तुम ठहरे, जो है सो, हमारे महमान। तुम्हारा पैसा खर्च कराना कोई ठीक है।'

माधो ने उसे एक पाव रसगुल्ले तुलवा दिये। फिर एक पाव गुलाब जामुन। भोला उन्हें तो किसी तरह खा गया, किन्तु फिर हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया, बोला, 'जो है सो, माधो भैया अब हमको माफी दो! अब.........'

'माफी कैसी, क्या नाम। बस एक पाव खुरचन, एक पाव कलाकन्द और एक पाव हलुवा.........'

'नाहीं कैसी, क्या नाम है' फलस्वरूप भोला को तब तक खाना पड़ा जब तक उसने अपने खाने के दोने पर ही न उगल दिया। तब कहीं जाकर उसका पीछा छोड़ा गया।

वह सोचता था कि आज तो जाना ठीक है नहीं, हां कल अगर सास रानी रोकेंगी तो भी वह हाथ पांव पूज कर निश्चित रूप से चला जायेगा। एक बार दिमाग में आया कि कहीं वे भेजे ही न तो। तो—उसने झटपट हाथ कान को लगाये। नहीं, नहीं, ऐसी बात तो सोचनी ही नहीं चाहिये। क्यों नहीं भेजेंगी—सासरानी। अगर न

भेजा तो वह देहली पर ही सिर पटक देगा, पर लेकर जरूर जायेगा। या नाम है—

किन्तु जैसे ही वह लौटा, महमान ने कहा—'वाह! तुम कहां चले गये थे। अकेली रेखा क्या-क्या कह लेगी, जाओ उसके काम में हाथ बटाओ। जाओ ना, जाना नहीं है क्या?'

'जाना है सासरानी जी! जाना क्यों ना है·······'

कुछ देर बाद पड़ी भोला की आवाज। वह उस समय था टट्टी में। वहीं से बोला—'आया मां जी, जो है सो·······'

'वाह—मर जा कमबख्त। अरे बोल कहां से रहा है। निकल तो—'

वह निकला! बहुत ही निस्तेज, बहुत ही कमजोर। जैसे आम को चूस लेने के बाद गुठली शेष रहती है—उसी तरह, सूखा सूखा।

'वाह, तुझे क्या हुआ रे—'

प्रत्युत्तर में उसने जबाब नहीं दिया। एक पटर, पटर की आवाज हुई, और फर्श गन्दा हो गया।

महामाया नाक मुंह बन्द करके भागीं, और दूसरे कमरे से चीख कर वो ही, तुझे मौत नहीं आती, कीड़े नहीं पड़ते, कमबख्त। जरा चला जाने दे उन्हें, हिसाब करके रहूँगी।'

वह वहीं से बोला—'नाहीं मां जी, जो है सो, यह तो एक दिन का है। बस अब उतरा ससुर।'

: २ :

तांगा आ गया था। रेखा ने निशि को नमस्ते की। महामाया के पांव छुऐ और फिर उस कमरे में जहां हरिकुमार का चित्र टंगा

था (वह तो दफ्तर के काम से आगरे गया था) कुछ देर तक वह उस चित्र को ऐसे ही देखती रही, जैसे लहरें किनारों को देखती हों। नाव पतवार को देखती है। जाने कितनी देर देखती रहती अगर निशि आवाज न देती—'भाभी।'

'हां।' उसने देखा रेखा ने कोई शृङ्गार नहीं किया। सिर्फ धोती बदली थी, और बाल संवारे थे !

'जल्दी आओगी ना।'

'हां !'

उसने पुनः जाकर महामाया के पाँव छुए। निशि ने कहा—'खत जरूर लिखना भाभी। तुम्हारी ही रौनक थी, अब कुछ दिन अजीब अजीब सा लगेगा। मैं खत लिखूंगी तो जवाब दोगी ना।'

'क्यों नहीं दूंगी।' तब ही उसे शरत् की याद आई। वह दौड़ी दौड़ी गई—देखा, कापी पर यूं ही लाइनें लगा रही थी। अजीब अजीब लाइनें। रेखा ने उसे गोद में उठा कर पूछा—क्या हो रहा है ?'

उसने तमक कर पूछा—'क्यों यह क्यों आई। देखती नहीं मैं मां का खत लिख रहा हूं। अब मुझे फिर एक दिन खराब करना होगा !'

रेखा ने नम्रता से कहा, 'मुझे माफ कर दो भैया, दरअसल मैं लखनऊ जा रही हूं ना ! इसीलिए आई हूँ।'

'तुम लखनऊ जा रही हो।'

'हां।'

'इसलिये कि मैंने तुम्हारा रंग ले लिया था, न जाओ भाभी।'

रेखा की आंख भर आईं ! वह पांव पर पड़ा था, उसे उठा कर बोली, 'सो नहीं रे। कहो तो तुम्हें भी ले चलें।'

'मुझे।'

'हां, हां! अम्मा जी से पूछ लेता हूँ—पूछूं।'

उसने जैसे कुछ सोच कर कहा—'नहीं, नहीं, मेरे पीछे से मां भी आईं तो वे लौट जायेंगी। मैं उन्हें चिट्ठी लिख कर बुलाना चाहता हूँ, लौटाना नहीं। चाचा तो रोज जाते वक्त कह जाते हैं कि वे बुला कर लायेंगे, झूठे कहीं के।' उसने जोर से रेखा का आंचल पकड़ कर कहा, 'तुम मत जाओ भाभी।'

तब ही महामाया की आवाज आई, 'तांगा इन्तजार कर रहा है। गाड़ी इन्तजार नहीं करेगी। सुना—'

वह तांगे पर बैठ गई। महामाया खड़ी थी, उसने तीसरी बार पांव छुये। शरत् उसके नजदीक बैठ कह रहा था, 'हम जा रहे हैं चाची को सी आफ करने। है ना भाभी।'

महामाया ने कहा—'मगर लौटेगा, किसके साथ।'

'उनके।' उसने माधो की तरफ संकेत किया और जब उसे बताया गया कि वह भी जा रहा है तो उसने भोला का नाम लिया। भोला अब भी उसी तरह खाये पिये को निकालने में व्यस्त था। शरत् ने रेखा से कहा—'भाभी यह भोला बहुत काम चोर और बदमाश है। इसे निकाल दो ना।'

महामाया ने, जो अब तक भोला के कहने का पश्चाताप कर रही थी, तमक कर बोली, 'वाह—अरे भाभी को भाभी कहता है। कमबख्त समझ न बूझ। उटपटांग सिर का सिरनामा क्यूं बकता है रे।'

उसने तमक कर कहा, 'बकता हूँ.........'

जैसे उनका आत्माभिमान जाग उठा हो, बलपूर्वक उतारते हुये बोली, कहे देती हूँ देर हो रही है। तुम्हें गाड़ी नहीं मिलेगी समझे।'

पंजाबी तांगेवान ने कहा—'ऐही गल तो मैंने दसी है……'

बहुत ही भावुकता से, चापल्यता से शरत् ने हाथ हिलाया और तांगा चल दिया।

यह फ्लेट था, टैगौर रोड। यानी दिल्ली और नई दिल्ली की हद पर। दक्षिण की ओर सुप्र किन्तु प्रकाशवान सड़कें थीं, सुव्यवस्थित मकान और घोर शांति। किन्तु उत्तर में थी कमला मार्केट—जहां दिन में लोहा पीट कर ट्रंक बनाये जाते हैं। एकाध किताब की, छोटे मोटे होटलों की, जनरल मर्चेंट की दुकानें थीं और उसके आगे था पंजाब ट्रांसपोर्ट का अड्डा। ऐतिहासिक अजमेरी गेट—ऐतिहासिक जी० बी० रोड और ऐतिहासिक भीड़। ताँगे वाला पहले यहीं से गुजरा, किन्तु भीड़ देखकर न वह काजी हौज की तरफ मुड़ सका और न सीधा जा सका। वह एक दम आसफअली रोड पर आ गया। कुछ नये मकान बन चुके थे, कुछ बन रहे थे।

इरविन अस्पताल, डिलाइट सिनेमा और दिल्ली गेट से होकर तांगा दरियागंज की ओर बढ़ा। गोलचा की भव्यता और एडवर्ड पार्क की शून्यता पार कर लेने के बाद शाहजहां का बनाया हुआ भव्य ऐतिहासिक किला था। सामने कुछ होटल, जैन मंदिर, वैष्णव गोरी-शंकर मंदिर और फव्वारा। तांगा फिर दायें मुड़ा। गांधी ग्राऊंड से ही रेल की भीड़ का अनुमान लग गया।

स्टेशन पर आकर पता लगा कि गाड़ी जा चुकी है। माधो ने पूछा—'क्या नाम है बहना—तो फिर, लौट चलें।'

'नहीं, पूछो और कोई गाड़ी है।'

वह पूछ कर आया। सिर्फ एक गाड़ी है। आगरे तक जायेगी, वहां से दोपहर को मिलेगी। कोई फायदा न होगा—बेकार दिक्कत होगी।'

'होने दो' उसने कहा और वहां का टिकट मंगवा लिया। बहुत दिनों से इच्छा थी कि आगरे का ताजमहल देखेगी—किन्तु वह इच्छा जसे किरण, बाबूजी और मां को देखने की उत्सुकता में समाप्त हो गई।

सांझ का झुटपटा जब बढ़ रहा था और दीप जल रहे थे तो वह चार बाग के परिचित स्टेशन पर उतरी। तार देने के बावजूद कोई अगवानी के लिये था ही नहीं मन कुछ बुझ सा गया। एक बस ही थी—वह माधो को लेकर बस ही में बैठ गई। इतनी उतावली में थी कि कुछ भी नहीं खरीद पाई।

: ४ :

माधो से पहले रेखा ने प्रवेश करके पुकारा, 'मां; किरण ! मां—कहां हो सब लोग।'

"कौन रेखा" मां दौड़ी आई। उसके हाथ आटे से सफेद हुये थे और रेखा को लगा जैसे पिछले दस दिनों में मां दस नहीं बीस साल बूढी हो गई है। वह चपलता जिसे देख कर सब लोग दांतों तले ऊंगली दबाते थे वह न जाने कहां लोप हो गई थी। दरवाजे पर अब भी उसी तरह हाथी का सतिया और हाथ की छाप मौजूद थी—किन्तु मां के चेहरे का उल्लास न जाने कहां उड़ सा गया था। मां ने दो कदम दूर से ही कहा—(वहीं ठहरो बेटी, एक मिनट।')

पांच मिनट बाद में पानी चावल आदि लेकर आई। एक वह और एक पड़ौस की नौकरानी, पड़ौस की औरत उसके तीन-चार ऊपर नीचे के बच्चे। रेखा सबसे बड़े प्यार से मिली। किन्तु अभी तक उसे किरण नहीं दीख रही थी। उसे लगा जैसे पिछले दस दिनों में

घर बहुत कुछ बदल गया है। सोफा की जगह अब दरी ने ले ली थी और एक गंदा तकिया पड़ा था। ड्राइंग रूम की तरह सजे रहने वाले कमरे में अब सिर्फ किताबें या दिवार पर टंगे कलैंडर, एकाध तस्वीरें ही नजर आ रही थी। वह बराबर पूछना चाहती थी कि किरण कहां है? माँ के गले से मिलकर रो लेने के बाद भी उसका मन हल्का नहीं हुआ था।

पूछने ही वाली थी कि हांफते फरफराती हुई किरण ने प्रवश किया। चेहरा कुछ सांवला सा मटमैला सा लग रहा था किन्तु मस्तक, खास तौर से आंखों और सिर का मिलाने वाला माथा बहुत ही उन्नत, हठ और कठोर सा हो गया था।

आते ही रेखा से लिपट कर बोली—'जीजी—बड़ी निर्दयी हो—एक भी खत नहीं डाला। देखती हो–हम तो सूख गये होते अगर माधो तुम्हें लेने न जाता।'

रेखा ने उसे बाहू पाश में जकड़ा और जकड़े रही। उसके आंसू उसके कपोल, उसका सिर, उसके बाल भिगोते रहे और किरण एक पुरखिन की तरह उसे दिलासा देती रही।

दो घंटे इसी तरह बीते, और तब आये कुमुद नाथ।

कुछ हांफते से, कुछ थके से। रेखा देखते ही यूं ही ···। इसलिये नहीं कि बहुत दिनों बाद उन्हें देख रही थी, बल्कि इसलिए कि जो कुछ वह देख रही थी, अगर देखने से पहले आंख मुंद जायें तो शायद ज्यादा ठीक रहे। बाबूजी उसके होश सम्हालने से अब तक एक ही स्कूल में उच्च कक्षा के अध्यापक रहे हैं और किसी किताब के लेखक होते हुये भी विद्वता में बहुत आगे थे। गणित के अध्यापक होने के बावजूद उनका सहवास अरुचिकर कभी न हुआ था। आज वही कुमुद नाथ शाम को बहुत क्लान्त, दुखित से घर आये थे। जैसे बहुत बूढ़े हो गये हों। उनका कुछ स्थूल जिसे थुलथुल नहीं कहा

जा सकता शरीर इस तरह वेजान था, जैसे नीबू निचोड़ लेने के बाद छिलका रह जाता है।

कुमुद नाथ ने कहा—'ओह, तुम आ गई।' रेखा कुछ नहीं बोली, सिर्फ कंधे से लगी रोती रही। उन्होंने थपथपा कर कहा—'छीं, पगली, क्या वहां भी इसी तरह रोती थी। देखती क्या हड्डियां निकल आईं।'

'और आप पर तो जैसे चरबी चढ़ गई है।'

'धत्—पके पांवों पर भी कभी निखार आता है।

'अच्छा तो वहां कैसी रही.......'

'ठीक से रही बाबूजी—' कह देने के बाद भी रखा अपने आंसू न रोक पाई। उसे लगा जैसे उसकी अनुपस्थिति में कोई बहुत बड़ा तूफान आकर उसे झिझोड़ गया है। मां जिससे मोहल्ले भर की लड़कियां, औरतें मेंहदी लगवाने आती थीं और उसके हर काम की तारीफ करती थी वह मां जैसे शैतान के पंजे में पहुंच गई और उस शैतान ने तमाम खुशी, तमाम हंसी छीन ली है।

बाबूजी का दुलार जैसे मिट गया है। जैसे उनके माइन्सप्लस का चक्कर खत्म होता है, उसी तरह जिन्दगी को जीत कर मौत ने नया मोड़ बना लिया है। जहां रेडियो रखा था वहां थाली पड़ी है और वह मशीन, जिसकी घर्र घर्र सुनते ही किरण के साथ हो गई थी अपने स्टेण्ड से न जाने कहां चली गई है। उस पर एक मटमैला सा मेजपोश पड़ा है और चारों ओर अजीब सा अंधेरा था।

उसने रेडियो के बारे में किरण से पूछा—'किरण, तुम लोग बिना रेडियो के रहते हो।'

नहीं तो ! जीजी, वह तो सुधरने गया है।'

रेखा ने पूछा, 'क्या बिगड़ा था उसका !'

'सोतो बाबूजी जाने। घर्र घर्र करके चैन नहीं लेने देता था इसी से।'

रेखा कुमुदनाथ की तरफ बढ़कर पूछना चाहती थी, 'क्यों बाबूजी, ठीक कहती है ना, किरण !'

तब ही तार वाले ने आवाज दी। कुमुदनाथ के हस्ताक्षर लेकर तार दिया। कुमुदनाथ ने पढ़कर कहा, 'ओह—किरण बेटी, सुन तो। कुछ मीठा वीठा तो रखा होगा न—कराओ इनका मुंह मीठा। हमारी बिटिया दिल्ली से आ रही है।'

'कौन सी बिटिया बाबूजी !'

कुमुदनाथ ने कहा, 'अरे हजार दो हजार थोड़े ही हैं—एक तू है और एक रेखा।'

'रेखा तो यह रही।'

'ओह'—उन्होंने दिमाग पर कुछ जोर डाला, 'देर हो गई, पोस्टमैन साहब, खैर। खबर तो खुशी की है ना। लाओ ना थोड़ा बहुत मीठा !'

तार वाहक अब कुछ नम्र पड़ा। उसे अपनी नहीं अपने विभाग की गलती मालूम हुई थी जो अक्सर होती है और वे एक दूसरे पर जिम्मेदारी डाल कर आंचल बचा लेते हैं। किन्तु अब उसे खिसिया कर बताना पड़ा कि वह निर्दोष है······! तार लेने वाला भी निर्दोष था। तो दोषी कौन—सरकार। शायद नहीं, दोषी है लालफीता, एक पर एक लादने वाली जिम्मेदारियों की शृंखला और वह नौकर शाही, जिसने हर विभाग के दिमाग खराब कर दिये हैं। एक आना लेकर पोस्ट कार्ड खरीदने जाइये—वह थर्ड ग्रेड क्लर्क; जो साहब हो नहीं सकता, मजदूर होना नहीं चाहता; समय बिताने के लिये, या समय काटने के लिये बराबर वाले से गपशप करता रहेगा, हैड क्लर्क की लल्लू चप्पू करता रहेगा। इस लल्लू-चप्पू में झूठी प्रशंसा और चुगली

के सिवाय कुछ नहीं होता, किन्तु वह करता है और करता रहेगा। देखता रहेगा लाइन बढ़ रही है और फिर धीरे-धीरे सीटी बजा कर फिल्मी गीत गुनगुना कर, पेन से एक कागज पर अपने ससुर को, साले को या बहनोई को खत लिखता हुआ पोस्टेज देता जायेगा। चाहे खुला पैसा हो ही, फिर भी वह कहेगा, पांच नये पैसे। इकन्नी नहीं।.... अब निकलिये लाइन से लाइये पांच नये पैसे भुनाकर और फिर पांच बज गये तो भगवान तक आपका मालिक बनने को तैयार न होगा। कुमुदनाथ यही सोच रहे थे कि तार वाले ने उन्हें सैल्यूट मारा, खाकी जीन की पेंट के पावचे उठाये और चला गया।

: ५ :

सवेरे खाना परोसते हुये जैसे ही मां ने रेखा को अनुपस्थित देखा, कहा, 'सुनते हो जी, रेखा रेडियो के बारे में पूछ रही थी।'

'कह दिया है सुधरने गया है ?'

'मगर कब तक भुटलाये रक्खोगे, यह भी सोच लिया है।'

'यह तो नहीं सोचा' सिर खुजला कर कुमुदनाथ ने कहा 'और सोचते भी कहां से ? वक्त ही नहीं मिला, रात बिटिया आई उनसे बात करते रहे।'

ग्रहणी चुप हो गई। वह जानती थी सोचकर भी क्या होगा। जो गया वह तो आ नहीं सकता। अगर आ ही सकता हो तो उसे औने पौने में ही क्यों उठाया जाता ....। कितनी बुरी, दुखदाई और निष्प्रेम होनी है लड़की की शादी। कर्ज लेकर दहेज और उसका भुगतान।

कुमुदनाथ चुपचाप खाना खाते गये। बहुत दिनों बाद घी देखा था। छौंकी हुई दाल देखी थी और ये बासमती चावल। यकायक वे

उछल पड़े। ठीक जैसे असाध्य प्रश्नों का हल पाकर उछलते हैं, वैसे ही उछल कर बोले, 'सोच लिया।"

रेखा आ गई थी, पूछा 'क्या सोचा है बाबू जी जरा सुनूं तो।' ग्रहणी डर गयी, कि कहीं खोल ही न बैठें, किन्तु उनकी आशा के विपरीत वे बोले, 'सोचा यह है कि इस साल किरण को भी धक्का दूं और मालकिन को सारे तीर्थ घुमा ही दूं। क्यों ठीक कहता हूं ना ?

'जरूर गलत है।' किरण बर्तन मांजती २ ही दौड़ी आई, 'तुम हमसे घात करोगे, यह हम नहीं जानते थे ?'

'घात कैसा बिटिया ?'

किरण बोली—नहीं नहीं यह तो हित है। जीजी को भाड़ में झोंक दिया। हमें चूल्हे डाल दीजिये और खुद निकल जाइये घूमने।' सबके सन्न होने के बावजूद उसने बहुत ही उत्कंठित, बैठे गले से कहा—'जिस दिन मेरी शादी की बात चीत हुई उसी दिन ही मैं गले में रस्सी लगाकर मर जाऊंगी।'

रेखा ने डांटा, "किरण, चुप नहीं रहेगी।' और वह एकदम चुप हो गई। जिस तरह जलती चिता को देखकर आदमी चुप हो जाता है। निर्जन पहाड़ों में गूंज कर आवाज चुप हो जाती है—किन्तु उसका मुंह फूल गया। बर्तन मांजने उससे मुश्किल हो गये। वह चुपचाप उठी। बोल रूक गया। आंसू पोंछ कर मुंह धोया और फिर बर्तन मांजने लगी। सारा का सारा वातावरण एक दम स्तब्ध हो गया था और रेखा खास तौर से उदास हो गई। उसने जो कल्पना की थी, वह शायद कल्पना ही थी। कुमुदनाथ ने कुल्ला किया, छाता सम्हाला और चल दिये स्कूल को। रेखा उनके सामने नहीं आई। वह ड्राईंग रूम वाले कमरे में किताबें उल्ट पुलट रही थी। कभी ये किताबें उसकी जिन्दगी होती थीं। कविता की कल्पना की तरह उसका मन उड़ता और वह दूर

किसी लोकमें पहुँच जाती थी। आज भी वह उन्हीं कविताओं की किताब को देख रही थी। उन पंक्तियों को पढ़ रही थी जिनमें 'वासन्ती, 'इन्द्र धनुष' जैसे शब्दों की लम्बी २ पांतें थी—उल्लास, विलास, रोने हंसने की सामग्री थी। एक पन्ना पलटा, लिखा था :—

हम हैं एक आकाश के
दो जगमगाते नक्षत्र,
रात भर टिमटिमाने के बाद भी
हम कभी नहीं मिल सकते—
कभी एक नहीं हो सकते।
हां, यह जरूर हो सकता है
किं हमारी किरणें,
छोटी छोटी किरण पांते—
एक ही धरातल पर टकराये—
और आलिंगन करलें !

ऐसी कवितायें जिन्हें पढ़कर वह न जाने क्या क्या सोचा करती थी। आज उसे बहुत ही बोझिल सी लगीं। वह चाहती थी कि इन किताबों को फाड़ दे। उनमें आग लगाकर हाथ सेंक ले तब कहीं उसे शांति मिले।

सोच रही थी यह सब क्या हो गया कि पीछे से हंसती किरण ने आकर कहा, —"सुनलो जीजी, आज हम या तो इन किताबों का पार्सल कराये देते हैं या आग लगाये देते हैं। जब देखो तब किताब। आओ इधर। अगर मेरा बस चले तो किताबों को आग लगवादूं। और इन लेखकों को, कवियों और उपन्यासकारों को हजरत गंज के चौराहे पर कुत्तों से नुचवा दूं।

'भगवान गंजों को नाखून नहीं देता किरण'।

'यही तो मुसीबत है।'

रेखा ने कुछ देर चुप रहने के बाद पूछा--'मगर किरण। यह सब तुम क्यों चाहती हो ? '

'इसलिए कि आज के कवि नहीं है, कपि हैं। लेखक नहीं, कलम घसीट हैं--बिल्कुल आवारा, उच्शृंखल अव्वल दर्जे के ढोंगी व अकर्मण्य !

क्या लिखेंगे। औरत, लड़की--'अंधेरी रात, बियावन, सुनसान। चूड़ियां, भांवरें, और सिन्दूर, प्रेम, रोमांस, और सहवास लिखते २ लोगों का दिमाग खराब कर दिया है। पढ़ने में कमजोर, कामचोर, निकम्मे, आवारा और बन गये लेखक। कितनी शान से लिखते हैं कि लड़के के सम्पर्क में सात लड़कियां आईं, सब उस पर मोहित हुई और उसने सबको नमस्कार कर लिया। जैसे लड़कियां नहीं किताबें हो गई। अखवार हो गया। रोज सुबह लिया, पढ़ा और तोड़ मरोड़ कर फेंक दिया। और जैसे लड़का ही न हुआ जादू का पिटारा हो गया, कामरूप का जादूगर हो गया। निकम्मे कहीं के !'

रेखा को इस व्याख्यान पर हंसी आ रही थी। उसने उसका हाथ में हाथ लेकर कहा--'एक बात कहूं किरण, तू उपन्यासकार बनजा। फिर पता लगेगा। कि जो लोग चाहेंगे वही तुमको लिखना होगा !'

'गलत' किरण ने इस तरह उंगली उठाई जैसे वह लड़ रही हो, वोली--'रुचि बनाने वाले होते हैं ये लेखक। लेखक नहीं बल्कि लेखकों का गुट--जो अपनी बासनांये, भंडास को कागज पर उतारते हैं और इनके स्वार्थी पिच्छ लग्गू आलोचक उसे यथार्थ वादी, सही और सुन्दर उपन्यास कह देते हैं। किसी भी उपन्यास या कहानी को यथार्थवादी कह देना उतना ही आसान है जितना सिर्फ अच्छे से

अच्छे लेखकों के रचे हुए उपन्यासों और कहानियों आदि को बोरिंग कह देना।'

रेखा चुप रही तो उसने फिर कहना आरम्भ किया—'मै तो कहती हूँ जीजी इस किस्म के 'चीप टायप' 'के उपन्यासों से तो ये न हों तो ही ज्यादा अच्छा है। लड़के आत्म हत्या करते हैं, क्यों ? लड़कियां गर्भ गिराती हैं क्यों ? सिर्फ इसलिये कि उनके दिमाग में परिस्थिति नहीं उपन्यास होता है। चलती लड़की का पीछा करने लगते हैं। सीटियां बजाते हैं—गंदा मखौल करते हैं, क्यों ? कम से कम इन तीन चार बदनाम लेखकों के साहित्य को तो आग लगा ही देनी चाहिए।' जो मर गये सो तो मर ही गये—मगर जो जिन्दा हैं उनको इस तरह दण्ड दिया जाए कि नानी याद आ जाए। वे समझ लें कि लेखक होना आसान हो सकता है मगर बनना मुश्किल।'

'और कवि...'

किरण धीरे से अट्टाहास करके बोली—'उनके लिए तो सिर्फ एक चारा है कि उन्हें कैलाश की चोटी पर बिठाकर ढकेल दिया जाय और ढकेलते वक्त कहा जाय कि स्वर्ग में लिखना इन कविताओं को। यहां तुमसे कुछ दित न हुआ इसलिए तुम बिदा लो, और हमें बिदा दो।'

रेखा ने पूछा—'और प्रबोध को भी ?'

'क्यों' वे क्या हमारी पुरोताही करते हैं। वे तो ओरों से भी एक कदम आगे है।

'मगर तुम्हारी सखि क्या नाम उसका श्री वह तो उनकी बहुत तारीफ करती थी।'

बहुत ही धीरे स्वर में किरण ने कहा—'और अब उनके कर्मों को भी रोती है।'

'क्यों, उसके हेम का क्या हाल है ?'

किरण को जैसे कुत्सित और घृणित हवाओं ने घेर लिया हो। कुनमुना कर बोली, 'न हेम का कुछ बिगड़ा और न प्रबोध का। हेम कालेज का पढ़ने वाला और प्रवोध महाशय कवि। जिस तरह मुर्गी तैयार होती है या गुब्बारे में गैस भरी जाती है उसी तरह प्रबोध महाशय ने तो अपने रंगीन गीतों से उसे फांसा—मगर क्योंकि वह उन्हें चारा नहीं डालती थी, इसलिए फन्दा डाला चितचोर हमने।

सिर्फ सूट बूट का प्रदर्शन, गुलाब का फूल, एक दो रुमाल, चार छै चितवन और एक पैन।'

रेखा को जैसे स्वाद आ रहा था, बीच में पूछ पड़ी 'तो पैन है तो रहे होंगे श्री के पास।'

किरण ने अजीब से अन्दाज में कपा, 'यहीतो एक रोना है।'

'पैन खो गया मगर दिल खाकर। अब विस्तर पर पड़ी रो रही है अपने कर्म को। 'सच'

'हां'

'क्यों—'

'यह उसके परिवार से पूछो जिसकी हर जगह छीं छीं हो रहीं है। लड़की न हुई खिलौना हो गया। अच्छा खिला दो—धोबी धुला जोड़ा पहना दो और हाथ में थमा दो कोई रोमांटिक उपन्यास, मजा जब है कि बाहर बज रही हो शहनाई, वो खत तुमने भी तो देखा था।'

'कौनसा।'

'अरे वही तो' किरण ने कहा—'जिसमें उन्होंने लिखा था, 'जाने कैसा मन हो रहा है—कैसी कैसी बात दिमाग में उठ रही हैं। कैसे कैसे ख्याल आ रहे हैं—'

'ख्याल—'

किरण झुंझला गई—'शहनाई जो बज रही थी। रिकार्ड जो बज रहा था, जब लिया हाथ में हाथ निभाना साथ—मेरे सजना।'

'ओह, तो यह खत पकड़ा गया था ना।'

'हाँ' किरण बोली—'खत पकड़ा गया, साथ ही बेले बेले की चाय पर पत्रदूत श्रीमान प्रबोध जी का पत्ता भी साफ हो गया। क्या खूब दिल की बात रखते हैं। मां बाप पैसा खर्च कर रहे थे कि लड़की किसी तरह मैट्रिक हो जाय ताकि और कुछ नहीं तो एक दो हजार से मुक्ति मिले और लड़की हैं जो कि इम्तिहान में नहीं बैठती। प्रबोध महाशय पढ़ाने आते तो सिवाय हेम के कोई बात नहीं। जानते हो पहली बार क्यों फेल हुई।'

'नहीं तो!'

किरण ने कहा—'दो बजे हिसाब की परीक्षा थी और रानी जी हेम की बाहों में बाहें डाल कर देख रही थी सैक्सन डी लैला....'

'अरे!'

'चौंको मत! मां बाप जैसे तैसे दुबारा तैयार हुए, मगर सैक्सन डी लैला में भले ही नायक नायिका को चोटी दे आया हो किन्तु श्री रानीजी साल ही में ले आई एक नन्हा मुन्ना! जिसके मां बाप नाजायज थे, मगर कहा गया उसे नाजायज। पूरक परीक्षा में आई उल्टियां और श्री रानी जी जिन्दाबाद!'

अभी तक मां नहीं लौटी थी। रेखा ने किरण के अन्दर आ जाने वाले अनायास परिवर्तनों को गौर से देखा और महसूस किया कि अब किरण पहली किरण नहीं है। उसने अचानक पूछ ही लिया—'मगर किरण, इस तरह तुम्हारा उत्तेजित होना भी कोई ठीक है?'

'बिल्कुल नहीं है जीजी। लोग शौक के लिए रोमांस करते हैं और भूख के लिए सहवास! श्री जानती थी कि हेम उसे नहीं मिल सकता—तब भी वह नहीं चौंकी, जानती हो क्यों। इसलिए कि उसने संयम की सब दीवारें खत्म कर दी थीं। उपन्यासों के गन्दे, सड़े गले कथानकों से उसने अपना दिमाग खराब कर लिया था। अब क्या, वह

समाज से अलग रह पायेगी। थू थू सुन कर जीने वाले मां बाप क्या उसकी इज्जत कर पायेंगे। ऐसी लड़कियों का भविष्य इससे ज्यादा उज्जवल नहीं हो सकता कि वे या तो समाज की गन्दगी को बढ़ायें या पटाखे खाकर, चूड़ियां पीकर अपनी गन्दगी जाहिर कर दें!'

कुछ और बातें होतीं कि मां ने खाने के लिए पुकार लिया।

: ६ :

दोपहर को रेखा को झपकी आ गई जब वह उठी तो मां बट्टे से दाल पीस रही थी और तीसरे पहर का आलस्य चारों ओर घुमड़ रहा था। उसने कुछ घबराई हुई आवाज में पुकारा, 'किरण—'

'क्यों ?'

मां की आवाज पर उसने पूछा, 'किरण कहां है मां, किन्तु उत्तर मिलने से पूर्व ही कुमुदनाथ झल्ली वाले के सिर पर रेडियो उठाये चले आये और आते ही बोले—'हां हां, यहां नहीं, यहां बाबा।'

'कहां!' झल्ली वाले ने पूछा। उन्होंने रेखा को पुकार कर कहा—'बेटी, जरा यह गिलाफ तो हटा दो। हां—टेक दो, इसे यहां। यहीं—'

झल्ली वाले ने रेडियो रखा, पैसे लिये और चला गया। जिस तरह बच्चे को कौतुहल या उत्सुकता रहती है उसी तरह कुमुदनाथ ने जल्दी से प्लग लगा कर स्वीच घुमाया और आवाज आते ही उछल पड़े, देखा बिटिया, है ना अच्छा ?

'मगर बाबू जी, यह अपना तो नहीं!'

'ना सही! हम गये रिपेयरमन पर! और कहा कि दिल्ली से आई है हमारी बिटिया। रेडियो शाम तक तैयार हो जाना चाहिये और जब नहीं हुआ तो—बिचारे दोपहर को ही स्कूल आये और दुकान पर बुला गये। जिसका फल तुम देख रही हो ना—'

'हां बाबू जीं—नया है, चार सौ से तो क्या कम होगा !'

'हां हां—कुमुद ने पूछा—'बेटी एक काम कर सकोगी ?'

'कहिये ।'

'जरा बाजार तक चलना था ।'

रेखा को जैसे मन मांगी मुराद मिल गिली, उछल कर बोली—अभी लो बाबू जी ! दो मिनट तो रुक सकेंगे ना । जरा मुंह हाथ धोना है ।'

. और दो घण्टे बाद जब वे दोनों बाजार से लौटे तो रेखा के हाथ में दो धोतियां थीं । ब्लाउज के लिये चिकन थी, एक फाउन्टैनपैन था । कुमुदनाथ के हाथमें कुछ फल, ढेरसी मिठाई और नमकीन था । खरीदते वक्त उन्होंने बताया था कि वे सैंकड मास्टर की लड़की के लिए खरीद रहे, किन्तु जैसे ही घर पहुँचे उन्होंने कहा—'बिटिया दालमोठ तो निकालो ।'

रेखा ने पूछा—'क्या दालमोठ उन्हें नहीं देनी, बाबू जी ।'

'किन्हें, बिठिया !'

'सैकेंड मास्टर साहब की लड़की को बाबू जी !'

'सो तो दे चुका—तुझे मालूम नहीं, अब मैं सैकन्ड मास्टर हो गया हूं । तीन रुपये की तरक्की कोई कम नहीं होती बेटी, समझीं ।'

रेखा जैसे उबल पड़ी—'तो यह सब मेरे लिये खर्च कर डाला । क्या होगा इन सब का ? पहले इक्कीस साड़ियां तो थीं बाबू जी !'

'ता दो और जोड़ लो बिटिया !'

'ओह'—रेखा ने जैसे कोई अप्रत्याशित बात सुनी हो । तिलमिला कर बोली, 'नहीं, यह हम हरगिज नहीं लेंगे । किरण को दोनों लौटा देंगे ! मगर वो है कहां—मां किरण कहाँ है ।'

मां ने कोई जवाब नहीं दिया, वह सुनी अनसुनी करके घड़ी में वक्त देखने लगी । तभी चप्पल फट फटाती हुई थकी, म्लान सी किरण

आ पहुँची। उसके आते ही रेखा ने पूछा, 'किरण, गई कहां थी !'

'कहीं दूर तो नहीं जीजी।'

'मगर पास तो कहीं गई थी। मैं आज पूछ के रहूगी कि यह रोज रोज तुम कहां चली जाती हो।'

'क्यों, शक होता है क्या ?'

रेखा ने कहा—'हो सकता है। और बड़ी बहन के नाते मैं यह पूछ कर रहूंगी कि तुम अकेली कहां जाती हो !'

'और न बताऊं तो !'

'तो'—उसने कुछ सोच कर उत्तर दिया, 'मैं तुम से क्या कहूं किरण ! लेकिन तुम बता ही क्यों नहीं देतीं।'

किरण जैसे कठोर होते होते पाषाण हो गई हो। कटुतापूर्ण मुस्कान को भयंकर वातावरण में बखेरती हुई बोली—'बता तो दूं, जीजी तुम्हें मगर दु:ख हुआ तो।'

'किरण' कुमुदनाथ उसे चुप करके कहा—'बेटी यह जाती है गंगोली के यहां। उनके अपने बच्चे हैं ना—इसे बहुत प्यार करते हैं ! दीदी कहते हैं।'

'सुना ! मैं भी दीदी हूँ—किरण ने कहा, 'मास्टरनी हूँ, पढ़ाने जाती हूँ।'

'ओह, तो तू ने बता ही दिया। खैर।' कुमुदनाथ ने रेडियो बन्द करके कहा,'बिटिया यह बनना चाहती है स्वावलम्बी। सो इसकी पढ़ाई भी जारी है और काम भी। गंगोली बाबू से कुछ कर्जा भी लिया था—' रेखा में इससे ज्यादा सामर्थ्य नहीं थी कि सुन सके। तिलमिला कर उठ खड़ी हुई। सोच रही थी कि यह सब उसी के कारण हुआ। माधो को स्कूल का चपरासी बना दिया, किरण आत्मस्वावलम्बी बनने के लिए दर दर भटकने लगी। जो स्वयं ट्यूशन से पढ़ी है, वह ट्यूशन करने लगी और वह—हवा के झोंके जिस तरह पत्तों को झिझोड़ देते

हैं, उसी तरह इन बातों ने उसकी स्मृति को मी झिझोड़ कर खर दिया।

घूम गवे,कालेज के दिन ! वह भी तो डाक्टरनी बनना चाहती थी। शायद कभी उसने अण्डा छुआ हो, उसे कटता, पकता देखा हो, किन्तु क्योंकि उसे डाक्टरी कालेज में दाखिल होना था, इसलिए उसने वैष्णव होने के बाद भी मेंढक चीरने में कोई विरोध नहीं किया। यह बात भले ही रही हो कि हर मैंढक काटने के बाद संस्कार वश उसे उल्टी आ गई हो, कभी मतली आई हो या कभी उसने मुंह पर कपड़ा लपेट कर यह कार्य किया हो—किन्तु उसके बाद भी क्या हुआ। उसकी टैस्ट ट्यूब, उसकी मोटी मोटी किताबें धरी रह गईं। क्योंकि लड़का मिल गया था, और हरिकुमार की मां महामाया उसी साल व्याह चाहती थी, इसलिए किताबों को लपेट कर रख दिया गया। परख-नली—प्रयोग शाला—तरह तरह के उपकरण हवा हो गये और जो शेष रहा वह उसके सामने था।

: ७ :

शाम को खाना खा लेने के बाद वह कोई बिनाई का काम लिए वैठी थी कि अचानक रेडियो ने प्रबोध के गीत की घोषणा की। थोड़ी देर बाद कोई गा उठा :

आज निमन्त्रण तुम सब को है—
मोद भरे इस आंगन में।

गीत शायद आगे चलता कि किरण ने आकर एकदम बन्द कर दिया। झुंझलाहट इस तरह वैठ गई थी कि उसे सिवाय घृणा के कुछ नहीं कहा जा सकता! इस प्रबोध के पीछे भी एक कथा है। वह कुमुदनाथ का गहुत ही प्रिय, मेधावी छात्र था। कालेज में आने के बाद उसने बी० ए० किया और अब लखनऊ में अच्छे गीतकार के रूप

में जाना जा चुका है। किन्तु वैसे है वह बहुत ही आत्माभिमानी, जिद्दी और हर बात पर बहस करने वाला। उसे किरण को संस्कृत पढ़ाने का काम सौंपा गया था, किन्तु जब उसमें उसने अपने गीत सुनाने शुरू किये तो किरण को उससे ही नहीं उसके गीतों से भी नफरत हो गई।

लेकिन प्रबोध इतना लापरवाह, इतना अजीब रहा कि उसने उसकी इस नफरत को अपने स्वभाव से नहीं विरोधी कार्यों से और भी कठोर बना दिया। आखिरी दिन उसके आने का था रेखा की शादी से दो दिन पूर्व। किरण जो हर काम समय पर करने की आदत बनाये हुए थी, पूरे एक घण्टे प्रतीक्षा कर लेने के बाद उठने ही वाली थी कि माधौ ने आकर कहा—'बीबी, वो आये हैं, क्या नाम....'

'क्या नाम, प्रबोध है।'

'हां हां!'

अप्रत्याशित बात इसी से सम्बन्धित थी, अब जब यह प्रबोध महाशय आ गये हैं तो उसे एक सवा घण्टे की बकवास का अनुमान हो गया। कुछ कहे इससे पूर्व ही प्रबोध ने आकर कहा—'नमस्कार। मुंह सुजा रखा है, बताना होगा देर कहां लगी।'

'—कोई जरूरत नहीं!'

'तो फिर यह तोबड़ा—क्या सूरत ही ऐसी है?'

किरण ने झुंझला कर कहा—'हां।'

'तो फिर इसी बात पर एक रूबाई सुनो।'

किरण ने उठते हुए कहा, 'जरा ठहरो, बाबू जी को और बुला लूं।'

'बाबू जी को—'

'हां, बाबू जी को, माँ को और रेखा जीजी को। ताकि अगर ऐसी वैसी बात हो तो उन्हें पता लग जाय कि मैंने संस्कृत ही नहीं रूबाई भी पढ़ी हैं।'

'बैठ जाओ, रूबाई नहीं होगी !'

किरण ने कचोट कर व्यग कसते हुए कहा---'क्यों नहीं होगी---आप तो सर्व हिताय काम करते हैं---'

प्रबोध ने चीख कर कहा---'बकवास बन्द करो ।'

'और आप तमीज से बात कीजिये ।'

'---मैं बदतमीज ही ठीक हूँ । मुझे तुमसे तमीज नहीं सीखनी है !'

'लेकिन---'

'चुप रहिये । एक शब्द भी निकाला तो हां कल का काम निकालिये ।'

उत्तेजित किरण ने कहा---'काम मैं नहीं कर पाई ।'

'तो मैं पढ़ा भी नहीं पाऊंगा ।'

'ना सही'---वह उठी, उठना चाहती थी किन्तु उससे पहले ही प्रबोध उठा, बोला---'मास्टर साहब से कह दीजिये कि मैं आया था ।'

'और यह भी कि बिना पढ़ाये चले गये ।'

क्रोध की रेखायें उसके दुबले पतले चेहरे पर कुछ दीप्त हो गईं उसने मुट्ठी खोली, बांधी और जाते जाते कह गया, 'हां !' जाते जाते अपने पीछे के सम्बोधन भी सुन गया, जिसमें उसे जोंक कह कर पुकार गया था ।

उस दिन से उसने कभी उस घर में पांव न रखा । इसके बावजूद भी हलवाई ठीक करने का काम अपने आप हो गया । उनके लिए वह पहले से प्रसिद्ध था । साथ उन लेखकों से भी भिन्न था, जो अनुभूति और प्रेरणा के चक्कर में पड़ा करते हैं । यह लेखन व्यवसाय का श्री गणेश उसके स्थानीय पत्र में प्रकाशित पुरस्कृत लेख से हुआ, जो उसने यूं ही मजाक के लिए लिख मारा था । एकाकी जीवन होने के बावजूद काफी लम्बा चौड़ा खर्चा पल्ले बांधा हुआ था । दो तिहाई भाग लेखनी से तथा शेष परीक्षा की तैयारियों से प्राप्त कर लेने के बावजूद

उसके दिमाग में कोमल विकसित सुलभ भावनाओं का नितान्त अभाव था।

कही सुना रेडियो के नाटक उनका स्टाफ नहीं लिखता, बाहर से लोग लिखते हैं, तो पहुंच गये एक नाटक लेकर! नाटक पहुंचा डाक से, दस दिन बाद अस्वीकृति स्लिप के साथ वापस आ गया। उसे अचरज हुआ, एक लाइन भी नहीं लगी, कहीं दाग नहीं—और नाटक वापस। वह वक्त काटने के लिये पढ़ता है, तब भी अच्छे अंशों पर पैंसिल से चिन्ह लगाता जाता है और ये रेडियो—शंका से उसकी आंखें फैल गईं। अगले दिन वह रेडियो स्टेशन गया। डायरेक्टर ने कहा—'देखिये, आप अपना नाटक प्रसारित ही कराना चाहते हैं ना—एक शिष्ट हास्य पर लिख लाइये। जिसमें एक जमादार हो, एक फिटर, एक बाबू और एक·····'

'एक नर्स·····'

'नर्स?' नाटक डायरैक्टर ने कहा—'ठीक है, यह ठीक है। एक नर्स। औरत तो नाटक की जान होती है।

तुम बेहद ठीक सोचते हो।'

'जी! मुझे गलत पता लगा। नाटक लो मैं लिख दूंगा, पर शायद आप बाहर के विचार लेना पसन्द नहीं करते।'

'क्यों—हम तो सब को 'बेहद' प्रोत्साहित करते हैं।'

'जी—' उसने अपना नाटक उसके सामने रख दिया। स्टेशन डायरेक्टर ने बताया कि वह और लिखले। वापिस गया हैं—इसलिये पढ़ा तो जरूर होगा। मगर क्योंकि हर रोज सौ पांडुलिपि वापिस करनी होती है, इसलिए कुछ याद नहीं रहता। बेहद काम होता है।'

तीन दिन बाद वह फिर स्टेशन डायरेक्टर के सामने उपस्थित हुआ।

इस बीच उसनें ऐसी बहुत सी बातें मालूम कर लीं, जो उसे

श्रेयस्कर हो सकती थीं। जैसे, अगर किसी सम्पादक से कोई चीज छपानी हो तो पहले उसकी प्रकाशित कृतियों के नाम जान लें। उसकी आदतों का बहीखाता तैयार कर ले और अगर पान खाने की आदत हो तो संस्कृत साहित्य से ऐसे श्लोक इकट्ठे कर ले जो पान की तारीफ करते हों। साहित्य में इस तरह की बातों को 'पाल्सन' कहा जाता है और जितना अधिक उसका पाल्सन होगा उतनी जल्दी ऊपर चढ़ जायेगा।

इस बार वह दफ्तर की बजाय उनके घर गया। जहां सारे प्लेट में हारमोनियम की आवाज गूंज रही थी। नाटक डायरेक्टर जो नाटक डायरेक्टर न होकर हिन्दी विभाग के परामर्शदाता भी थे, काफी थुलथुल होने पर भी संगीत पर अपना अधिकार जमाये हुए थे। उसके पहुँचने पर गुनगुना रहे थे। जब दिल को सताये गम, गम, गम, गम—तो छेड़ सखी सा रे, गा मा, पा, धा, सा रे—स र ग म। तो छेड़ सखी, तो छेड़ सखी—तो छेड़···सखी, कहते कहते उनका गला सूख गया! इसी बीच उन्हें प्रबोध के आने की सूचना मिली।

प्रबोध ने कहा, 'वाह, गला हो तो ऐसा हो। संगीत का ज्ञान आपको बहुत है। यह आप ही गा रहे थे ना।'

स्टेशन डायरेक्टर मन ही मन मुस्कराये। उस कुटिल हंसी का मतलब—और 'पाल्सन', और मस्का यानी और चाटु कारिता! तब ही एक दुबली पतली, विचित्र सी औरत ने झल्लाये स्वर में आकर कहा—'मैं सिर तोड़ लूंगी—अपना या जो सामने होगा, उसका!'

'हां हां, ऐसा न करना!'

'तो क्या करूं।'

'बताता हूँ', स्टेशन डायरेक्टर ने उसका परिचय प्रबोध से कराते हुए कहा, 'आपसे मिलिये श्री प्रबोध और आप रेडियो तारिका—'

'उर्वशी!'

'अरे, आपने कैसे पहचाना ?'

प्रबोध बोला—'बस ऐसे ही। परसों जो इनका पार्ट सुना, बस—'

उर्वशी मुस्करा दी और पाल्सन जिन्दाबाद ! चाय से स्वागत हुआ और एक महीने में दो नाटक खेल लिये गये। किन्तु एक दिन फिर जब उसमें अहं फूट पड़ा तो वह एक भी दिन इस डायरेक्टर के यहां न पाया। ऐसा था प्रबोध।

आज यकायक जैसे ही उसकी आवाज सुनी किरण ने बड़बड़ा कर रेडियो बन्द कर दिया। रेखा ने पूछा—'यह क्या ! इतनी नफरत तो होनी नहीं चाहिये। अगर किसी को प्यार नहीं दिया जा सकता तो नफरत क्यों बांटी जाय।'

'हां नफरत बांटती हूँ !' मुंह फुला कर किरण ने कहा और रो पड़ी। रेखा उसके स्वभाव की इस असमान्य अस्थिरता से अवाक् थी, कुछ कहना ही चाहती थी कि कुमदनाथ ने प्रवेश किया।

: ८ :

एक माह के छोटे से लखनऊ प्रवास में जैसे रेखा दिल्ली को भूल सी गई थी। नबाबों का प्यारा नगर लखनऊ सभ्यता का केन्द्र, गौमती के कछार और जू की विशेषताओं से समस्त लखनऊ जैसे उसके रग २ में बस गया था। सुबह उठती, गोमती के किनारे चली जाती। प्रसिद्ध इमामबाड़े में घंटो किरण को साथ लिए २ घूमती। तमाम मिलने जुलने वाली सहेलियों के घर जाती। दो पहर को खाना खाती रेडियो सुनती और सो रहती। तीसरे पहर के बाद वह जू पहुँच जाती और रात तक घूमती घामती लौटती।

यकायक इस उल्लास को, इस खुशी को एक ब्रेक सा लग गया। जिस तरह पंतग कटती है और उड़ाने वाला उदास हो जाता है।

उसी तरह यकायक वह एक दिन उदास हो गई। निशि ने एक खत लिखा था जिसमें हरिकुमार के बारे में लिखा था, दिल्ली के बारे में लिखा था और फिर आत्म समर्पण सा करते हुये लिखा था--

'भाभी, तुम सब कुछ हो जाने के बाद भी वही हो जो मैं हूँ। यानी एक औरत हो—हिन्दुस्तान की सदियों से दबी पिसी बाली औरत और वह औरत वह जो सिर्फ एक जिन्दगी के सहारें अपनी जिन्दगी काटती हो। इसलिए किसी का सहारा छिनने से पहले उसे सावधान कर देना ही ठीक है।

जब सूरज नहीं होता तो चांद महज एक शून्यकार पिंड के अलावा कुछ नही होता। पर जब सूरज किसी और पर अपनी ज्योति लुटा दे तो अंधकार निश्चित ही है, क्यों न तुम्हें चेता दूं।

भाभी यह कोरी फिलासफी नही है। मुझे उम्मीद है कि तुम जल्द से जल्द आने की कोशिश करोगी – क्योंकि न मेरा मन लगता है और न शरत का।

रेखा नें खत पढ़ा और यकायक उसके दिमाग में उठा—क्या होगा क्या हो सकता हैं।

हरिकुमार था, चरित्र उसके लिए कभी बंद किताब न रहा और जैसा चरित्र उसका है तो कोई ताज्जुब नही दुनिथा की हर लड़की और लड़का के साथ-साथ सैक्स की भूख होती है। उसमें भी यह भूख है—कुछ तिलमिलाता खराश लिये हुये। मां का शासन उसके ऊपर कुछ इस तरह मंडराता रहा है कि उसे कभी स्वतन्त्र रूप से सोचने का मौका ही न मिला और मौका मिला तो उसने उसका उपयोग नहीं किया। उसकी आँखों की नीली झीलों की लहरों में वासना का एक ऐसा सागर छलछलाता जो सिर्फ लड़की देखता है, मां, बहिन—चाची मौसी नहीं।

खत उसके हाथ में था और दूर पेड़ पर हवा से पत्ते झड़ रहे थे। झड़ते चले जा रहे थे—और उन झड़ते पत्तों को बहुत ही कातर बिल्कुल बेबस, लाचार और विवश। आंखों से एक पक्षी देख रहा था।

यही दशा उसकी थी उसके सामने हरिकुमार जो कुछ करता है क्या वह मान्य है ? क्या वह ठीक है। अगर जब ही ठीक नहीं रख पाती तो तीन सौ मील से जाकर क्या फिर किनारे लगा लेगी। उसने खत पढ़ा—और निशि का चित्र आंखों में उभर आया।

निशि और हरिकुमार काफी दिन साथ-साथ रहे हैं—ऐसी अवस्था में जब हवा की हर सांस से प्रणय की प्रेरणा मिलती है। हर बादल मेघदूत बनता है और हर रोज प्रणय की नई सुबह होती है।

किन्तु क्योंकि महामाया निशि की चाची लगती है इसलिये वह हरिकुमार की बहन हुई। मुसलमानों में अक्सर ऐसी शादियां हो जाती हैं—किन्तु एक कुलीन हिन्दु परिवार में यह संभव नहीं।

शादि न हो, प्रेम तो हो सकता है। प्रेम न हो रोमांस ही सही।

दूसरा खत महामाया का था। बहुत ही संक्षिप्त सा और उससे ज्यादा आज्ञात्मक लिखा था—वे आ रही हैं। क्योंकि कुमुद नाथ ने पहले बहुत से वायदे पूरे नहीं किये हैं, इसलिए इस बार उन्हें संकेत कर दे कि वह वायदे पूरे हों।

जैसे बाप लड़की के पैदा होते ही कर्जदार हो जाता है।

रेखा ने खत पढ़े, दोहराये और चीरकर चिथड़े चिथड़े कर दिये। जिन किताबों से उसे मित्र जैसा लगाव रहा है, वे दुश्मन सी दीखने लगीं। वह उठी, किताब उठाई, छत पर पहुँच गई।

तीसरा पहर बीत चला था। धूप मुंडेर पार कर चुकी

थी और के क्वार के मन्द झकोरे हरसिंगार, कदम्ब कचनारों की बाहों में झूल लेने के बाद कुरसी बिछाये बैठी रेखा के अलकों से खेल रहे थे। उसकी आंखें न किताब पर थी और न कहीं और। जाने कहां खोयी हुई थी—किरण ने पूरे पांच बार आवाज दी और उत्तर न आने पर उसकी किताब छीनते हुये कहा,

'जीजी !'

'हां'

'हो कहां ?'

'कौन में ?'

'नहीं तो मैं, देखो कहे देती हूं कि इस तरह यहाँ चलने वाला नहीं। क्या कोई इस तरह उदास होते हैं ?'

'मैं उदास तो नहीं हूँ, किरण।'

'जी नहीं, तुम भला क्यों होने लगी। तुम तो प्रसन्नता दोनों हाथों से उलीचती हैं, है ना !' कुछ देर बाद वह फिर बोली, 'सुनो, जीजी ! सब कुछ हो सकता है मगर'

'मगर, क्या किरण…'

'मगर तुम उदास नहीं हो सकती।'

'सो तो नहीं हूँ, किरण। लड़की के भाग्य में सिर्फ आंसू ही तो होते हैं, अगर कभी च्यू पड़े तो कोई बुराई थोड़े है।'

किरण ने अपनी बात को बहुत ऊंचा करके कहा, 'जीजी, तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। लड़की कभी लड़की थी—दबी पिसी लड़की। अब वे जमाने लद गये, समझीं।'

'कोशिश कर रही हूँ !'

'छीं' रेखा के आंसू किरण ने पूंछ डाले, 'जीजी यह सब क्या है। आखिर तुम्है दुख किस बात का है ?'

'दुख है सुख रोग का।'

'ओह—' किरण ने पूछा—'अब यह भी बतादो कि निदान कैसे होगा ?'

'कहीं से जहर लादो। खालूं तो ठीक हो जाए।'

'जीजी' किरण जैसे आसमान से गिरी, कुछ कहती इससे पूर्व ही माधो ने आकर कहा, 'क्या नाम है, किरण बीबी जी, वो आ गई हैं।'

'कौन—'

'अरे वो ही'—माधो ने दोनों हाथों से मोटी हथिनी का संकेत कर के कहा—'सासरानी। जीना चढ़ती चढ़ती हांफ गईं हैं।

'कौन, मां जी—'लदर पदर रेखा नीचे दौड़ी और महामाया के पैर छूकर एक कोने में दुबक कर खड़ी हो गई।

महामाया कह रही थी, 'आजकल तो सफर करना भी दूभर है। ऐसी भीड़, ऐसी ऐसी भीड़ कि राम राम।

और ये पंजाबी—अपनी औरतों को इस तरह रंडी बनाकर घूमते हैं। ऐसा सिंगार, पटार—ऐसा...., हे राम !' रेखा जानती थी कि महामाया में प्रांतीयता नहीं नगरता कूट २ कर भरी थी। उसे सिर्फ सहारनपुर पसन्द है, जहां वह पैदा हुई पली और बड़ी होकर अब दिल्ली में बूढ़ीं हो रही थी। सहारनपुर के गन्ने भले ही मीठे होते हैं —किन्तु महामाया में शायद मीठे पन के नाम पर सिर्फ इस किस्म की हीनता ही रहती हो।

नीचे से हार्न की आवाज आई। महामाया ने अपने भारी भरकम शरीर को कोच पर आधा, दो तिहाई समाकर कहा—'अरे माधो—उस टैक्सी वाले को तो हवा कर दो। देखना ज्यादा पैसा मत देना ...समझे। क्या करूं हरिकुमार से इतना कहा कि भुना कर दे भुना

कर दे दे—सौका नोट कोई हंसी खेल तो है नहीं भुनाना। पर वो सुनता किसकी है जी।' वह कह ही रही थी, और माधो टैक्सी वाले को भी विदा कर आया।

बात नाशते की चली। बोली : 'रेखा, ज्यादा कुछ करने की जरूरत नहीं। बस बादाम का हलवा हो जाये—कुछ नमकीन और कुछ··· इस कुछ में फल थे, बिस्कुट थे और न जाने क्या क्या?

नाशता खाते खाते उसकी नजर रेडियो पर पड़ी उठकर हाथ से छुआ, बजाया, चलाया और बोली—'क्या नया खरीदा है?'

'जी, नहीं तो···'

रेखा रुकी तो किरण ने कहा, 'बात यह थी कि वह रेडियो तो खराब हो गया था'—

'सो बेच डाला होगा! वैसे रेडियो है अच्छा, रेखा ले चलो। दिल्ली से भिजवा देंगे। किसी ने सच कहा है 'रेडियो के लिए मकान तो हो।'

'मगर—

उन्होंने किसी की न सुनी। बोलीं, 'अरे कोई मना थोड़े ही करे हैं क्यों जी बेबे?'

किरण को हंसी आ गई। सहारनपुर के गन्ने मीठे, आदमी में गन्ना से ज्यादा पानी का असर और तिस पर और महामाया की 'बेबे।'

यानी बहन···

ग्रहणी ने भरे मन से अनुमति दी और रेडियो उनके कब्जे में। रेखा को जैसे किसी ने कोड़ों से पीटा हो। तिलमिला कर बोलना चाहती थी।

किन्तु चुप रही।

अगले दिन वह बिदा हो गई। किन्तु कितने दुख से, कितनी कटुता से। वह रात भर रोती रही—इसलिए की अब एक नया बोझ बाबू जी पर आ गया। और चलते चलते एक घटना और घट गई। फल आयुके थे, किन्तु महामाया ने आदेश दिया, 'हम लोग फल नहीं ले जायेंगे, रेखा।'

'लेकिन वे तो आ चुके हैं।'

उन्होंने वहीं चीखकर डांट दिया, 'क्यों, बासी फल और मिठाई लेजाकर मेरे नाम पर कालिख लगानी है क्या? वीना को मैंने हमेशा पच्चीस देकर भेजा था। बेकार का बोझा मैं नहीं लाद सकती। समझी।'

फल यह हुआ मिठाई फल के साथ २ पच्चीस रुपये उनके अधिकार में आ गये।

विदा होते समय रेखा की नजर द्वार पर लगे शुभ चिन्ह सतिये पर गयी और मन में उठा कि इस सतिये को शादी के उन अवशेषों को उतार फेंके, जला दे—जिन्होंने उसके पर नोच डाले। जिन्होंने पूरे परिवार की गति को खा डाला। अगर किरण न होती तो शायद उसे मोटर में ही गश आ जाता। किन्तु उसे गश नहीं, दिल्ली पहुँचना था सो वह स्टेशन पर आई।

गाड़ी चलने को थी कि कुमुदनाथ के पांव किसी ने आकर छुये।

घूंघट की ओट से रेखा ने देखा यह था प्रबोध।

कुमुदनाथ ने उसे बताया कि, 'सुनो प्रबोध, हमारी बिटिया जा रही हैं मिलोगे उनसे।'

'हां हां।'

प्रबोध ने पहले महामाया को नमस्कार किया, फिर रेखा को। पन्द्रह मिनट तक इधर उधर की बातें करता रहा, किन्तु किरण की तरफ उसने आंख तक न उठाई। गाड़ी चली तो कुछ उदास सा विप-

रीत दशा में देखता रहा और रेखा उसे देखती रही जिसके गंभीर चेहरे पर अहं और मानवीय प्रेम गंगा जमुना की तरह मिल रहा था। जाते जाते उसने कहा—'कभी दिल्ली आओ ना प्रबोध।'

'हां आना तो है।'

'सच।'

प्रबोध ने कहा, 'झूठ नहीं जीजी—एक या दो हफ्ते में।'

'तो फिर पता नोट करो ना।'

'सो तो याद है। कुछ और बताओ।' तभी गाड़ी ने सीटी दी और डिब्बा कुछ आगे खिसक गया।

: ९ :

अगले दिन रेखा दिल्ली में थी। दिल्ली नहीं नई दिल्ली और दिल्ली को मिलाने वाली सरहद पर परिवर्तनों से भरपूर श्यामकृष्ण फ्लेट में। कितने परिवर्तन हो गये थे एक माह में। निशि अब कोरी लड़की नहीं रही वह एक सौ पच्चीस रुपये कुछ आने पाने वाली संभ्रात पोस्ट आफिस की महिला कर्मचारिणी बन गयी थी। और शरत् वह अब अच्छे खासे ज़ू का मालिक हो गया था। पूरा एक कबूतर घर, दो तीन पिंजड़े, छोटी सी हौदी में तैरने वाली मछलियां और बड़ा सा तितलियों का भंडार।

यह सब जाने अनजाने में कैसे हो गया—यह तो अब भी एक आश्चर्य था। किन्तु था बहुत आकर्षक। शरत् यह सब लेकर बहुत खुश था और मरी मां को बहुत कुछ भूल चुका था।

उसी ने उसे घुमाया, फिराया और जैसे ही वह फ्लेट के परले सिरे पर आयी उसे निशि की दादी का पोपला मुंह दीख पड़ा। सौभाग्यवती का आर्शीवाद पाकर वह उठने लगी तो, दादी ने जान बूझकर

चर्चा छेड़ी। पोपला मुंह घुमाकर बोलीं : 'बिल्कुल अपनी मां पर गई है, चंडालनी। खाना पीना और मजे करना। अरे दुनिया में कहती फिरती है चाचा चाची की मदद कर रही हूँ। क्यों बहू, जिन लोगों के घर में दाना नहीं होता तो क्या वे ब्याह शादी नहीं करते। क्या उनकी बहू बेटियां तीज त्यौहार नहीं मनातीं, जो इसे नौकरी करने की सूझी है। इतने मर्दों के सामने मुंह खोलना, दांत फाड़ना मुझे नहीं सुहाता। पर बहू, जिसके भाग्य फूट जाते हैं उसे सब देखना होता है। सब सुनना होता है। जिन्दगी भर पापड़ बेले हैं और अब...' कहते कहते वे रो पड़ीं।

रेखा ने उनके आंसू पोंछे। और कुछ हो, न हो रेखा अपने स्वभाव से यशस्वी बहुत है। वह किसी को कभी भी कुछ कहने का अवसर नहीं देती और थोड़ा सा शिष्टाचार नाम मात्र के आदरणीय शब्द या सवेरे उठकर पांव छू लेना ही उसे यश का भागी बना देता है।

बातें हो ही रहीं थीं कि निशि आ गई। आते ही रेखा को गले से लगाती हुई बोली—'भाभी तुम !'

'अरे तुम....' रेखा निशि को पहचान तक न पाई। कहां चटक मटक से भरपूर निशि और कहां वह खादी के ब्लाउज और साड़ी में लिपटी, संभ्रात कर्मचारिणी।

निशि ने बताया कि अच्छा यही है कि अपने आपको बचाकर रखा जा सके। डाकखाने में तो भूत होते हैं।

'भूत....'

'अरे भूत नहीं, भूत के भी बाप। ऐसे देखते हैं जैसे इनके मां नहीं बहन नहीं। जैसे इन्होंने किसी औरत को देखा ही नहीं। इस समय रेखा को विभीषण वाली कथा याद हो आई, जिससे हनुमान ने पूछा था कि आप इस राक्षस नगरी में कैसे रहते हैं ? उसने हाथ जोड़

कर जबाब दिया था, 'हे भक्तराज। तुम तो हमेशा भगवान के चरणों में समर्थ होकर रहते हो और भक्त राज कहलाते हो पर मैं इस राक्षसपुरी नगरी लंका में उस तरह रहता हूँ 'जिस तरह बत्तीस दांतों के बीच....

रेखा सचमुच निशि के अपूर्व त्याग से गद्गद् हो गई। सोचने लगी सच मायनों में इन्सान कहलाने का अधिकार तो इसको है। किसी और को क्या हो सकता है। किन्तु दस मिनट बाद जब उसने उसी निशि को एक दम टिपटाप, सिर से पांव तक रेशमी और गुलाबी देखा तो नशा उतर गया। वह अब लान् में बैठी बड़े आराम से हरि-कुमार को चाय पिला रही थी और जिसे यह अधिकार था, वह रसोई से सिर फोड़ रही थी।

अगले दिन करवा चौथ था, सुहागिनों का व्रत विशेष। जन्म-जन्मान्तर एक ही पति की कामना के लिए, सुहागभाग के प्रति सब लड़कियां दिन भर भूखी प्यासी रह कर अपने पति की मंगल कामना करती हैं और सुहाग देवता चन्द्रमा के उदय को सुहाग उदय मान कर उसे नमस्कार करती हैं।

क्योंकि रेखा का पहला व्रत था, इसलिए किस तरह होगा, क्या होगा, यह सब जानने के लिए सिर्फ महामाया तो थी और महामाया ने जो बताया, वह थी एक मुसीबत। ब्राह्मणों की ही एक जाति अन्त्येष्टी क्रिया करती है और कभी उसका नाम महाब्राह्मण या आचार्य था। इसलिए कि वे मनुष्य का आखरी संस्कार सम्पन्न करते थे, किन्तु इसके प्रति उनकी वृत्ति इतनी निम्न हो गई कि अब उन्हें अचारज या डकौत कहा जाता है। यही हाल महामाया या उन सब सासों का है जो बहू से खसोटना तो जानती हैं, बेटी को देना नहीं। पच्चीस रुपये नकद का लटका था कुमुदनाथ के लिये। और उन्होंने एक गंदी सी गाली देते हुए कहा—'वाह, अच्छे समधी मिले हैं, वायदा करके भूल जाते हैं!'

रेखा जिसके बड़े बड़े बाल धुल जाने के बाद तेल न लगाने की वजह से सूख कर पूरी कमर पर अस्त व्यस्त रूप से फैले थे। अधिक बर्दाश्त न करने के कारण एक कोने में खड़ी सुबक रही थी कि हरि-कुमार ने प्रवेश करके कहा—'तुम यहां आंसू बहा रही हो, हूँ। और मां रसोई में जुटी पड़ी है। यही सब करने के लिए तुम लखनऊ से आई हो ?'

'जी।'

रेखा को बीच में टोक कर उसने कहा, 'शादी मैंने की जरूर थी, पर मां की सुविधा के लिये। अगर तुम उन्हें सन्तुष्ट नहीं रख सकती तो इन शादी ब्याह के ढकोसलों का कोई फायदा नहीं। समझीं—'

'जी'—रेखा उसी तरह अस्त व्यस्त रसोई घर में चली गई और भूखी प्यासी चूल्हे के पास बैठी रही। करीब तीन बजे, महामाया ने आकर कहा 'वाह, तू यहीं बैठी है !'

'जी—'

'जी की बच्ची, क्या चाहती है कि तेरा पाप मुझे लगे। चल उठ—कहानी सुन और पानी पी ले। वो तो सोते सोते भी डूब गया। शादी का पहला साल है—और घर में एक करवा नहीं। एक भी तो····वाह, क्या खूब मां बाप हैं।'

'अम्मा जी !' रेखा ने रुआंसे होकर कहा—'मैं भूल गई थी। बाबू जी ने बीस रुपये मुझे चलते चलते दिये थे। मैं देना भूल गई—अभी लाती हूँ—'

रेखा ने बीस रुपये उनके हाथ पर रक्खे। तब महामाया ने अपनी तुनक भरी आवाज में कहानी सुनाई—एक थी सात भाईयों की बहिन·······' जिसने चौथ का व्रत बिना सुहाग देवता के दर्शन के तोड़ लिया था और अपना सोहाग खण्डित पाया था। भाई कब चाहते थे

कि बहन भूखी रहे, प्यासी रहे। कम्बल श्रोढ़, श्रटारी पर चढ़ कर फूंस जला कर दिखा दिया कृत्रिम चांद।

बहन ने व्रत तोड़ा—उधर सोहाग टूटा। किन्तु थी तो सुहागिन ना, भला कैसे श्रपने पति को जल जाने देती। सावित्री की तरह मौत से लड़ी श्रौर चोदहवीं चौथ मैया से अचल सोहाग का यश लेकर लौटी।

कहानी का श्रन्त करते हुए महामाया कुछ बड़बड़ाई, फिर बोली, 'जैसे उसके दिन फिरे, भगवान सब के दिन फेरे, किसी को तंग न करे—'

डूबते हुए सूरज को प्रणाम करके उसने दूध लिया और लेते ही उगल दिया। आंखें इस तरह भारी हो रही थीं जैसे किसी ने मिरच भोंक दी हो। खाना वह बना चुकी थी। श्राकर श्रपने कमरे में लेट गई। बहुत ही उदास श्रौर खिन्न। जाने कैसे झपकी श्रा गई श्रौर स्वप्न भी देख लिया। लोग कहते हैं स्वप्न जाग्रत जीवन घुड़-दौड़ की फोटोग्राफी होती है—या दिमागी उथल पुथल।

किन्तु उसे दिखाई दिया प्रबोध, किरण का अध्यापक। किन्तु श्रध्यापक रूप में नहीं, किरण के पति रूप में। एक वर का रूप—श्रौर सजी सजाई पालकी में बैठने के लिये तैयार किरण! बाजे बज रहे थे, सोहलें गाई जा रही थीं, और विदा हो रही थी कि घोड़ा बिदक गया। एक जोर का धमाका हुश्रा श्रौर उसकी श्रांख खुल गई। दूसरे कमरे में रेडियो बज रहा था। बाहर महामाया भोला पर क्रुद्ध हो रही थी श्रौर वह स्वप्न देख रही थी, ब्याह के, बारात के।

: १० :

श्रगले दिन ही लखनऊ से एक मनीश्रार्डर श्राया, पच्चीस रुपये का। वह तो गनीमत थी कि महामाया की बजाय उसे ही वे मिले। इसलिये कि महामाया उस वक्त रेखा के हाथ से बने फुलकों को काफी तादाद

खा लेने के बाद आराम से सेज पर आंख मूंदे आराम कर रही थी और वह महरी की अनुपस्थिति में स्वयं बर्तन रगड़ रही थी।

मनीआर्डर के साथ साथ डाकिये ने एक नीले रंग का लिफाफा भी उसे दिया था, जिसे उसने बर्तन मांजने के बाद खोला।

किरण का चार पृष्ठ का लम्बा सा खत था। आम तौर से लड़कियां बहुत ही संवार कर, बड़े बड़े गोल गोल अक्षर लिखा करती हैं, किन्तु किरण उसे तो भगवान जाने विधाता ने कैसे लड़की बना दिया। सच पूछो तो वह लड़का ही थी। इस तरह मक्खी पर मक्खी मार रखी थी कि बहुत कुछ अंश तो एक बार पढ़ने पर समझने में भी नहीं आया। पूरे खत में उसने प्रबोध को जी भर कर कोसा था। और लिखा था, जीजी, तुम्हारा आना जितना शुभ होता है उससे अधिक अशुभ होता है तुम्हारा जाना !

देखो तो उसी दिन की बात—स्टेशन पर महाशय प्रबोध मिल गये। मान न मान, मैं तेरा मेहमान। जनाब अगर बाहर तक साथ निकलते तो बात भी थी। घर तक साथ गये। मै जानती थी कि ये महाशय किसकी ताक में हैं। इनका अहम् क्या क्या कर सकता, सो भी जान लिया। किन्तु उल्टी-सीधी पट्टी पढ़ाना इन्हें खूब आता है। बाबू जी को न जाने कैसी पट्टी पढ़ा गये कि उन्होंने मेरा गंगोली के यहां पढ़ाने जाना बन्द करवा दिया। अब क्या करूं, कुछ समझ नहीं आता। सुबह से शाम तक घर पर रहूँ, कुढ़ूं या...ये रिक्तचिन्ह किसी अशुभ कामना के सूचक तो नहीं इसी से रेखा सिहर उठी। किन्तु खत तो खत्म नहीं हुआ था। बहुत से प्रसंग थे, बहुत सी बातें थीं। इसी में एक सूचना थी कि शायद प्रबोध अगले हफ्ते दिल्ली आयें।

किरण और प्रबोध—

प्रबोध और किरण !

और वह स्वप्न ! रेखा को अपने ऊपर हंसी आई, अपने दिमाग

पर हंसी आई और न जाने क्यों वह किसी दुर्भाग्य की कामना करके रो दी।

दो बजे थे—शरत् की बस फ्लेट के आगे आकर खड़ी हुई। अक्सर बस रुकते ही खिलखिलाता शरत् के बोझ से बोझिल—किताबों के थैले इधर उधर फैंकता आता था। उसकी आंखों में, चाल में ऐसा उल्लास होता था कि सब को पता लग जाता था कि शरत् आ गया। किन्तु आज वही शरत्, मुंह लटकाये, दीन मलीन मुखामुद्रा को समेटे धीरे धीरे आ रहा था और उसके पीछे था चपरासी जिसने आकर रेखा को सलाम किया। 'पिअन बुक' खोल कर एक चिट्ठी निकाली और रेखा के हस्ताक्षर कराके वह चिट्ठी दे गया।

शरत् ने आते ही घोषणा की, 'मैं स्कूल नहीं जाऊंगा कल से !'

'क्याआ....'

महामाया को अपने सामने देखकर वह चौंक उठा, किन्तु उसके बाद और कठोरता से अपना थैला उछालता हुआ बोला—'कह जो दिया कि स्कूल नहीं जाऊंगा !'

'मगर क्यों !'

'मुझसे क्यों पूछती हो—उससे क्यों नहीं पूछती। वह बेबात मुझे मारती क्यों है ?'

'किससे पूछूं, मास्टरनी से।'

'हां ! जानती हो उसने मेरी तितली वाली बोतल कूड़े दान में फेंक दी। मैं पापा से कह दूंगा, कि मैं नहीं पढ़ूंगा। नहीं पढ़ूंगा !'

महामाया ने कहा—'वाह, बिना पढ़े तुझे रोटी नसीब नहीं होगी, मरे। और यह क्या है'—उन्होंने रेखा के हाथ से चिट्ठी लेकर पढ़ी। चिट्ठी मुख्याध्यापक की तरफ से थी, जिसमें लिखा था :

प्रिय महोदय,

आपकी ध्यान आपकी संरक्षकता प्राप्त शरत्—की ओर आकर्षित

किया जाता है जिसका व्यवहार दिनोदिन अशोभनीय होता जा रहा है।

गत मासिक परीक्षा में वह हर विषय में बुरी तरह फेल हुआ था। जिसकी सूचना आपको पहले भी दी जा चुकी है। आज उसने सभी सीमाओं को तोड़ कर खिड़की का शीशा तोड़ डाला, अपने सहपाठी की किताब फाड़ डाली है।

इससे पूर्व कि उसे कोई सख्त सजा दी जाये—आपका सहयोग आमन्त्रित किया जाता है। और इस बात की अपेक्षा की जाती है कि आप यथासमय अपने शुभ और मूल्यवान विचारों से हमें सूचित करेंगे।

भवदीय—

ह० मुख्याध्यापक

पुनश्चः, कल ही नया शीशा लगवाने के लिये पांच रुपये तेरह आने भिजवा दीजियेगा। बिल संलग्न है।

खत पढ़ने के बाद पहली प्रतिक्रिया महामाया पर पांच रुपये तेरह आने की हुई। श्यामकृष्ण हर माह फीस अदा करते हैं, किन्तु खाना नहीं खाते। अब या तो अदा कर दें और या मांग करें। मांग करने से पैसा मिल जायेगा, यह तय है किन्तु बात ओछी है। अगर कहीं हरिकुमार ने सुन लिया तो। यह ठीक है वह हद से ज्यादा उसका कहना मानता है—मगर है तो लड़का ना। और इस पांच रुपये तेरह आने वाली समस्या के दिमाग आते ही उनके दिमाग में पशुपन जाग उठा!

'वाह—कमीन, कमबख्त' के साथ एक अच्छी खासी मारपीट कर दी। सुबकते हुए शरत् का कान मसल कर बोली—'खबरदार, जो रोटी के हाथ लगाया तो।'

'नहीं लगाऊंगा।'

'निकल जा इस घर से। वाह, जरा ठसका तो देखो। दांत आये नहीं डाढी हिलने लगी—'

किन्तु शरत् भी इसी दुनिया का प्राणी था। वह एक बात जानता था कि पापा उस ही के हैं। और हर एक लड़का अपने पापा पर या मां पर गर्व कर सकता है, चाहे किसी और पर करे या नहीं। तमककर बोला, 'नही जाऊंगा समझीं। यह मेरा घर है, पापा का घर है। तुम्हारा नहीं!'

'क्या कहा—' महामाया शायद और मारतीं कि बीच में रेखा ने आकर कहा 'छीं, अम्मा जी! क्या अब इसे मार ही डालेंगी।'

'नहीं नहीं पांव धोकर पूजा करुंगी। यह हमारा अफसर है, अभी से कुछ समझता नहीं; तो आगे क्या करेगा। कमबख्त गया तो अपनी मां पर है ना! छोड़ दो इसे मैं आज इसे बता ही दूं।'

'उससे क्या होगा अम्मा जी!'

महामाया कुछ कुपित और क्रुद्ध भी होकर बोली, 'चुप रहो, रेखा मैं तुम्हारा कहा तो मानने से रही।'

रेखा बोली' कहा नहीं अम्मा जी; मैं तो विनती कर रही हूं! बच्चा है, जैसी बात इससे बोलेंगे वैसी ही सीखेगा।'

'और नहीं सीखता हो तो तुम सिखा देना। वाह, आजकल की की छोरियां सिर्फ लैक्चर देने को ही होती हैं—हट रास्ते से!'

पूरी कोशिश के बावजूद भी शरत् पिटा, उसने अपनी स्लेट फोड़ डाली और अनशन करके लेट गया।

दिन डूब गया। अंधेरा बढ़ रहा था रेखा दरवाजा थपथपा कर हार गई—वह बाहर नहीं आया, न ही दरवाजा खोला!

कबूतर उसी तरह फड़फड़ाते रहे। मछलियां अन्न की गोलियों के लिये मुंह ताकती रहीं और वह सबसे अलग लथग अकेला कमरा बंद किये लेटा रहा।

अन्त में एक उपाय रेखा को सूझा। उसने मेज पर खाना रखा। और सूचनार्थ अलार्म बजाना शुरू किया।

शरत् ने सुना। एक बार, दो बार, तीन बार। इससे ज्यादा जब्त करना शायद उसके बस की न थी जो कर सकता। एक दम दौड़ कर कमरे से बाहर निकला—और फिर न जाने क्यों सोच कर पीछे हटने लगा!

'शरत्' रेखा ने पुकारा!

वह रुका किन्तु बिल्कुल चुप; मुंह फेरे हुये।

नाराज हो?'

वह फिर चुप!

रेखा ने उसे गोद में लेकर खाना खिला दिया। वह चुपचाप खाता रहा जब खा चुका तो रेखा ने कहा, 'सुनो शरत् -तुमने शीशा तोड़ा।'

तोड़ा'

'मगर तोड़ा क्यों, शरत्?'

उसने रेखा, का हाथ झटककर कहा, 'नहीं बताता कौन है तुम पूछने वाली—कहते कहते उसकी बत्तीसी भिच आई। ऐसा वीभत्स रूप शायद ही उसने देखा हो। कुछ डर सा उसे लगा और भयभीत सा होकर शरत् से दूर हो गई।

शाम को इस तरह खाना खिलाने का अंतिम सीन हुआ। हरिकुमार और निशि दोनों एक साथ लौटे। किन्तु जैसे ही उसने घर में प्रवेश किया, उसका चेहरा बदल सा गया। एक आक्रोश, एक क्रुद्ध छाया उसके दिमाग पर तैरती गई।

उसने कोट उतार फैंका, रेखा ने उसे उठाया। उसने फीते खोलने चाहे रेखा झुक गई। जूते उतारे, मोजे निकाले। टाई खोली और कुछ खिल कर बोली—चाय लाऊं ना।'

UNIVERSITY LIBRARY
ALLAHABAD

नहीं ।,

उसने साश्चर्य पूछा, 'नहीं ।'

'हां अब चाय नहीं खाना होगा !' रेखा ने कहा, 'उसमें तो देर लगेगी ।'

'क्यों ?'

'कहीं जाना है क्या ?'

'तुम पूछने वाली कौन, मुझे दस मिनट में खाना तैयार मिलना चाहिये ।'

'रेखा जाती जाती बोली, बैठिये तो ।'

पांव मेज पर रखकर सिगरेट केस निकालते हुये हरिकुमार ने कहा—'मगर देर नहीं होनी चाहिये ।' जाते जाते रेखा नें कहा, 'नहीं होगी, जनाब ।'

और सचमुच वह दस मिनट में खाना ले आई । खाते खाते उसकी नजर रेखा के साड़ी के आंचल पर पड़ी । उसे खींच कर बोला—यह दाग कैसा है ।'

'दाग ?'

हां यह दाग । कभी तुम्हारे बाप को ऐसी साड़ियां नसीब हुई भी हैं—इस तरह अगर कपड़ा खराब करना है तो बाबा हमें बख्शो । हम कोई लाट सहाब तो हैं नहीं ।'

रेखा ने सफाई देनी चाही, 'मगर.......'

किन्तु वह बोला, 'चुप रहो, गलती मा नें की है और उसका नतीजा वही भुगतेगी । वही एक हाथ बांटनें वाली और बुढ़ापे में सुख देनें एक लड़की चाहती थी—उसे क्या मालूम था कि ऐसा सफेद हाथी मिलेगा मां, बाप कुछ और नहीं सिखा सकते थे—कम से कम खाना खाना और साड़ी पहनना तो सिखा सकते थे ।'

रेखा नें प्रतिरोध नहीं किया, किन्तु लाख चाहनें पर भी वह अपनी

मुस्कान स्थिर न रख पाई थी। यकायक हरिकुमार नें चीख कर कहा : 'पानी--'

वह दौड़ कर पानी लाई। बिना कुछ बोले वह गटक गटक कर पी गया। पी लेनें के बाद फिर फुल्के खाने लगा, रेखा को उदास देखकर बोला, 'तुम्हारें कोई घर का मर गया है क्या !'

'जी।'

'उसने डांट कर कहा। मेरें सामने मौत की तरह संजीदी होकर न बैठो। अगर नहीं बैठना चाहती हो तो जाओ मां--'

महामाया के भय से वह पहले ही बाहर निकल कर पान लगाने लगी। महामाया नें आकर कहा, 'हां हरि।'

रेखा डरती थी कहीं कुछ उसके बारे में कह न दे। किन्तु उसने कहा- मां, पान नहीं लगा क्या ?'

'अभी ले'--महामाया आई और झटपट पान लगा कर ले गई। रेखा का पान उसके हाथ पर हो रहा। हरिकुमार ने पान खाया। मां के सामने किसी शर्म से सिगरेट नहीं पीता था। फिर मोजे डाले, जूते पहने। टाई बांधी; कोट पहना और धम् धम् करता हुआ चला गया। रेखा ने देखा हरिकुमार गया। वह रोज इसी तरह आयेगा और चला जायेगा। इसी तरह सूरज डूबेगा, पिघला सा सोना दूर आसमान में फैलकर सिमटने लगेगा—शाम के साये रंगीन होकर, गहरे होकर रात की रेशमी चादरों में सिमटते जायगे। उसी तरह चांद उदय होगा, तारे चुपचाप रात से कहानी सुनते जायेंगे और जिन्दगी कटती जायेगी।

अगर यही जीवन है तो नरक क्या है ? वह एक टक नीले आसमान की तरह उदास होकर देख रही थी, जहां चीलें मंडरा रही थी। चाहती थी सिर फोड़ ले, फांसी लगाले, कुछ कर गुजरे कि कोई गाता हुआ गुजरा : मेरे मन हंसते हसते चल, आज नहीं तो कल हर जायेंगे ये बादल। यह एक भिखारी की आवाज थी।

गीत की लय सूखी होने पर भी वह भिक्षा देने के लिये दौड़ी, किन्तु तभी महामाया ने अवाज देकर बरतन उठाने का हुकम दिया। वह एक दम सिटपिटाती सी लौट गयी।

भिखारी अब भी गा रहा था : सब दिन होत न एक समान!

: ११ :

अगली सुबह फिर शरत् की समस्या आ पड़ी। बहुत सुबह ही हरिकुमार साइकिल उठा कर चल देता है—और श्याम कृष्ण तो पूरी ही रात गायब रहते थे। अब दो ही घर के जिम्मेदार व्यक्ति थे, वह और महामाया।

महामाया ने भोला के हाथ पाँच रुपये तेरह आने रक्खे, और उसे आदेश दिया कि वह जैसे हो, उस कमबख्त नासपीटे को स्कूल छोड़ आये।

दो क्षण बाद ही भोला आकर बोला—'जो है सो छोटे बाबू नहीं जाते।'

'वाह—' महामाया ने कहा—'तो तेरा हट्टा कट्टा होना किस काम आयेगा, क्या तू उससे जबरदस्ती नहीं कर सकता।'

'जो है सो, बहू जी से जबरदस्ती करूं, क्या? आप बैठी हैं पूजाघर में, देखती नहीं वह बहूजी के आंचल में सिर छिपाये खड़ा है।'

महामाया बड़बड़ाती हुई बोली—'कब तक मुंह छिपायेंगे। तू उससे कह, कि""ठहर तो एक मिनट।' कहकर वे खुद उठीं; किन्तु मन में न जाने क्या उठा, उन्होंने उसे ही जाने का आदेश दिया।

उधर रेखा ने शरत् से कहा : 'मेरा राजा भैया, देख अगर तू स्कूल गया तो शाम को तुझे गोद में बिठाल कर रोटी खिलाऊंगी।'

किन्तु शरत् चुप रहा। रेखा ने पूछा—'जायेगा ना!'

'नहीं।'

'नहीं—ठीक है न पर एक बात बताओगे शरत्!'

'पूछो।'

क्या तुम मेरा कहना नहीं मानोगे। चले जाओ न—' शरत् ने अजीब ढंग से बस्ता उठा कर कहा कहा। जाता तो हूँ, मगर एक बात कहे देता हूँ—अगर अब के उसने मारा तो फिर कभी नहीं जाऊंगा।'

'अच्छा।'

'कह देता हूं कभी नहीं जाऊंगा।'

'अच्छा बाबा अच्छा।' रेखा में शरत् को भोला के साथ विदा करते हुये कहा। 'तू ही तो मेरा राजा भैया है।' और जब चला गया तो बहुत देर तक वह उसे जाते देखती रही। भोला पाँच रुपये तेरह आने की रसीद लेकर आ गया तो उसे सुध आई कि खाना बनेगा।

दरसल मध्यवर्ग में नारी जीवन इतना नपा तुला इतना मशीनमय और जड़ होता है कि हर बात का समय बंटा होता है। वही सवेरे नहाना धोना, नाशता, बच्चों स्कूल भेजना और फिर घंटे भर तक यह चर्चा कि क्या बनेगा ? जबकि सब को मालूम है कि घूम फिर कर बात दाल चावल, साग सब्जी पर आ ही जायेगी फिर भी पूरे एक घंटे तक इस पर चर्चा होती है।

रेखा रसोई के लिए दाल बीन रही थी; कि स्कूल के उसी चपरासी ने नमस्कार किया। रेखा चौंकी 'अरे तुम—'

'हां बीबी जी मैं आदर्श विद्यालय से आया। यहां शरत् तो नहीं आये।'

'क्या शरत्।'

'जी हां वे खम्बे के सहारे उतर कर भाग निकले हैं।'

राम जाने कहां होगा।'

'क्या आज भी उन्हें डांटा।'

सो मैं नहीं जानता बीबी जी। पर—उनके बास्ते से एक कबूतर

निकला था और कबूतर क्लास में निकले तो यह तो ठीक नहीं है।'

रेखा ने उत्तेजित होकर पूछा—'ठीक क्या है। तुम लोगों ने स्कूल को कैदखाना समझ रखा है, जानते हो, वह कहां गया है।'

नहीं—'

'तो फिर स्कूल क्यों चलाते हो। अगर उसे कुछ हो जायेगा तो तुम्हारा स्कूल उसे पूरा कर देगा, क्या ? बोलो।'

रेखा शायद ही पहले कभी इतने जोर से बोली हो। उसकी आवाज से चकित महामाया ने पूछा—'क्या हुआ; है।'

चपरासी ने कहा—'वो बाबू भाग गये।

'जी हां—और बीबी जी हम पर नाराज होती हैं। अब बताओ हम क्या कर सकें—'

रेखा स्थिर रूप से 'बोली, तुम स्कूल बंद कर सकते हो। क्यों चलाते हो—'

'सो हम—'चपरासी कुछ कहे इससे पूर्व महामाया ने रेखा को भीतर जाने का आदेश दिया, और फिर कुछ ऐंठ कर बोली—'वह भाग ही गया।'

'हां बीबी ऐसे शैतान ही हैं। हम पूछने आये थे कि वे यहां तो नहीं आये–'

नहीं।'

कहकर महामया भीतर चली गई। रेखा ने देखा कोई फर्क नहीं, कोई अंतर नहीं उसी तरह सब काम चल रहा था। पर सोचती थी कि ममता क्या इसी को कहते हैं।

भोला भी अनुपस्थित था—शायद सब्जी लेने गया होगा सोच रही थी इतना बड़ा शहर, इतने तांगे, रिक्शे, भीड़ भाड़ और अकेला शरत्। जिसे यह नहीं मालूम कि उसके कितने कबूतर हैं क्या वह गली के मोड़ याद रख सकेगा। नही रख पायेगा। जरूर नहीं रख

पायेगा। तो फिर···उसके मुंह से निकला, 'भोला·······'

'क्या है।'

यकायक अपने सामनें हरिकुमार को देख कर सहम गई। सिर्फ कह पाई—'जी !

'पांच मिनट में चाय बन सकती है ना।'

'जी हाँ।'

'तो भेजो और सुनो—'

जाते जाते रेखा मुड़ी—'जी ! 'हरिकुमार ने चेतावनी दी, ज्यादा देर नहीं लगानी चाहिये, समझे।'

'जी—' वह जब चाय लेकर पहुँची तो यकायक चौंक गई। उसके सामने एक मोटा, हट्टा-कट्टा लम्बे कद का पहलवान सा सिक्ख हरिकुमार से बातें कर रहा था। उसके चेहरे पर ऐसी भयानकता खेल रही थी कि रेखा डर गई।

हरिकुमार ने संबोधित करके कहा। 'रुको मत, भीतर ले आओ।'

जी—'मन ही मन सकपका कर रेखा आई, चाय रखकर जाने लगी तो हरिकुमार ने आदेश दिया 'चाय बनाओ।' बड़ी सावधानी से उसने घूंघट के भीतर से झौंक कर चाय उडेली और उडेल कर चुप खड़ी हो गई।

सरदार ने कहा—बैठिये जी।' किन्तु उसने बैठने की बजाय घूंघट की ओर से हरिकुमार को रेखा। उसकी क्रूर आंखों को देखा और सहम कर बाहर आ गई, किन्तु अब भी उनकी बात-चीत सुन सकती थी।

हरिकुमार कह रहा था : ना मुमकीन दो हजार से कम तो किसी हालत में नहीं हो सकता आप समझते हैं कि सिर्फ मेरी जेब में ही जायेगा। मुझे धेला नहीं चाहिये, आपके सामने दे दूंगा।'

'मगर प्राहा जी····'

'आप बेकार की बहस कर रहे हैं ?'

'बहस नहीं हजूर, एक बिरानी अरजी कर रहे हैं। देखिये जी-ए पाकिस्तारा कि बरणा साड़ा तो बेडा ही डूब गया। मकारण नहीं रहे––घर जल गये। बच्चों दी तालीम भी मारी गई––अब तुसी साहब बहादुर ए गल दसो कि असी भी जिन्दा रह सकें। ×

'मगर सरदार सहाब।'

सरदार ने कहा––'ऐ लो पगड़ी ! त्वाड़े चरणों में पा दी है।'

साड़े निक्के निक्के बच्चे, उरणादी तालीम, उरणादी परवरिश। बादशाहो तुसी नहीं जाण दे असी असल लाहौर दे हैं। अनारकली विच साड़ी दुकाना सी––और उत्थे ही''''।' +कहते रहते उसकी आंखों में आंसू भर आये।

हरिकुमार ने कहा – 'मगर सरदार सहाव।'

'तुसी गल मारणों जी––नौ सौ में किता। हजार में दे देगा––त्वाड़े बच्चे जीवेंगे जी–दुकाण अलाट हो जाणी है तो फिर सुरजीत दी कालेज शुरु कर देणी है। विजयसिंह और प्रतापसिंह दी खट्टी मिट्ठी

×बहस नहीं हुजूर एक विनती हम कर रहे। देखिये जी पाकिस्तान क्या बना हमारा तो बेड़ा ही डूब गया। मकान नहीं रहे, घर जल गये। बच्चों की तालीम मारी गई। अब आप सहाब बहादुर ऐसी बात करो कि हम जिन्दा रह सकें।'

+ये पगड़ी लो, तुम्हारे पैरों में पड़ी है। हमारे छोटे-छोटे बच्चे, उनकी तालीम, उनकी परवरिश। बादशाहे, आप नहीं जानते हम असल लाहौर के हैं। अनारकली में हमारी दुकान थी और उधर ही ·········

गोलियां छुट जाणी हैं बादशाहा ।' +

'मगर सरदार सहाब ?'

हमारा बुड्ढ़ा सरदार आंसू पोंछता हुआ निकला—'कुत्तें हैं खूण मुंह लग गया है। अगर इणदे घर लुटते तो जाणदे मुसीबत कि हों दी है। बिवाई फटी नहीं, कि पीर की गल कि—*

रेखा जानती थी हरिकुमार किसी ऐसे विभाग का कर्मचारी है जो जनता की सुविधा से सम्बन्धित है, किन्तु उसमें हजारों के हेर फेर होते हैं, यह उसे पता नहीं था।

हरिकुमार ने आकर कहा—'कुछ लोक लाज, शर्म लिहाज करना तुम्हारे मां बापों ने करनी सिखाई है कि नहीं। क्या भोला मर गया था।'

'वह सब्जी लेने गया था।'

'और मां—

'वह पूजा कर रहीं थी।'

हरिकुमार ने डांटा, 'चुप रहो। भोला सब्जी लेने गया था। मां पूजा कर रहीं थी सिर्फ तुम थीं, जो गैर मर्द के सामने आते हुये जरा न हिचकचाई, अगर न आती तो क्या तूफान आ जाता।'

'आप नाराज नहीं होते ?'

+ आप बात मानिये। नौ सो मैंने कहे हैं हजार दे देंगे तुम्हारे बच्चे जिंदा रहेंगे। दुकान अलाट हो गई तो सुरजीत की कालेज की पढ़ाई जरूर हो जायेगी। विजयसिंह और प्रताप कि 'खट्टी मीठी गोलियां छूट जायेंगी बादशाहो।

* कुत्ते हैं। खून मुंह लग गया है। अगर इनके घर लुटाते तो पता लगता मुसीबत क्या होती है। बिवाई ही नहीं फटी तो पराई पीर क्या जानें।

'हां हां नाराज होता, फांसी चढ़ा देता। बस'—कहकर वह नये बूटों की चर्र मर्र करता हुआ चला गया।

अब एक नया सवाल रेखा के सामने उपस्थित हुआ। निशि भी तो हरिकुमार की बहन है। उनके रिशतेदार के परिवार का एक अंग है, फिर क्या वह बाहर के लोगों के सामने नहीं आती। जाती है, और जानकर जाती है। तो फिर उस पर यह दोष क्यों।

'क्यों ?'

सवाल उठा और बैठ गया, वही कल वाला भिखारी ही गा रहा था, 'पराधीन सुपनेहू सुख नाहीं।'

ठीक है वह पराधीन है, समाज से, संस्कृति से, विचार से और पुरुष की सबलता से।

और वह आजाद है—इस आजादी गुलामी की बहस में उसकी आखों में एक मासूम चेहरा उभरा—बहुत ही दीन—हीन, मलीन शरत् का चेहरा। जिसे घर पर अधिक लोग दुतकारते थे और स्कूल की मिस उमलागर। जो मिस होते हुये भी ही कई बच्चों की संरक्षिका थी, और इन्हीं अर्थ लाभ सम्पन्न बच्चों के मुकाबले में जब वह शरत् को देखती थी तो उसके दिमाग का पैंडुलम हिलने लगता था और वह मरे हृदय से सुनती 'शरत ने शैतानी की।'

'शरत् ने मारा।

'शरत ने कांच तोड़ डाला।'

और आज उसने सुना—'शरत् के वस्ते में कबूतर।'

'कबूतर'

'हां, मानीटर ने बताया, 'आप चलिये तो गूटरगूं २ कर रहा है।' किन्तु इसी बीच शरत् अपना कबूतर नेकर की जेब में खोंच नीचे उतर गया। मिस उमलागर ने कान दबा लिया, किन्तु इसके अलावा चारा भी क्या था। फिर चपरासी भेज दिया, फिर अपने संरक्षण

पढ़ने वाले बच्चों को नैपकिन देकर हाथ धोने का ढंग सिखाकर क्रोध वश मुंह पर फैल जाने वाली लिपस्टिक को ठीक करने चली गई। इसके बाद वह अपने बड़े नाखूनों पर नेल पालिश लगायेगी। उसे सूखने देगी और सूख जाने के बाद फिर एक बार आइने के सामने अपना मुंह ठीक करेगी—अदा से बाहर निकलेगी। तब तक वह उस शरत् को भूल जायेगी जो अब रास्ता काट पीट कर जाने क्यों श्मशान जा पहुंचा था।

तीन मील की यात्रा उसने पांच घंटे में तय की थी। जमना के पश्चिमी किनारे पर लाल लाल सूरज का गोला डूब रहा था और वह चुप चाप किसी जलती हुई चिता को देख रहा था।

उसने पास खड़े अचारज (आचार्य) से पूछा— 'यह सब क्या है ?'

'आग, देख नहीं रहा लपटें।'

'—तो क्या सब जल जायेगा ?'

'हाँ हड्डियां रह जायेंगी—मगर तू है कौन।' अयारज ने उसकी सूरत देखकर कहा, 'अरे तू किसके साथ आया है ?'

'मैं अकेला आया हूँ।'

'अकेला'—

'हां ममी को ढूंढ़ने आया हूं। मेरी ममी भी तो यहां आई थी ना....'

'हे राम—शिव शिव' अचारज ने उसका हाथ पकड़ा कि तब तक जमना के पानी पर आश्रित कबूतर फर्र से उड़ गया, शरत् चीखा—'मेरा कबूतर।'

'आ तो—यहां आ' उसने उसे एक परिचित आदमी को सौंपा जो उसे छोड़ गया। आते ही वह रेखा से ऐसा मिला, जैसे बच्चा मां से मिलता हो। और रेखा—

उसके तो आंसू थमते ही न थे।

तब ही महाम्माया ने आकर कहा, 'आ तो कमबख्त आज श्याम कृष्ण से कह कर रहूंगी—कब तक तू मेरे नाक में चने चबायेगा, सो देखना है। आ तो--' कहकर उसे घसीट ले गयी। शायद किसी नई यंत्रणा के लिए।

: १२ :

दिवाली के दिन आसमान पर जो बादल छाये थे, वे बरस कर ही रहे। भीगती हुई निशि ने आकर कहा, 'तुम भाई साहब, यहां ?'

'हां मैं तुम्हारा ही इन्तजार कर रहा था।'

'क्यों ?'

'ऐसे ही--देखो तो रेखा कहां है, यहीं कहीं होगी। उससे कहो कुछ नहीं तो एक कप काफी ही बना दें।'

'क्यों--मैं कैसी हूँ।'

हरिकुमार ने कहा—'तुम काफी बनाओगी निशि ?'

'हां क्यों--क्या मैं काफी भी नहीं बना सकती। तुम एक मिनट ठहरो, अभी काफी बनाकर लाती हूँ। वह चलने लगी तो उसका आंचल पकड़कर उसने कहा--'निशि, सुनो तो। एक मिनट यहां नहीं बैठ सकती।'

मगर निशि चली गई। दो क्षण बाद ही बुने हुए स्वेटर का एक पर्त लेकर रेखा आई। और बोली, 'जरा देखिये तो। यह ठीक रहेगा ना।'

'क्या, है क्या ?'

'स्वेटर'

हरिकुमार ने कुछ अजीब सा मुंह बनाकर कहा, 'रेखा देखो तो निशि काफी तैयार करने गयी है?'

'मैं जानती हूँ।'

'क्या जानती हो?'

रेखा के कपोलों पर कुछ स्मित मुस्कान फैली—'वे शहर में ही रहीं हैं। अच्छी काफी बना सकती हैं।'

'ओह, हरिकुमार ने कहा, 'तो अब तुम काम चोर होती जा रही हो।'

'क्या करें, हुजूर का हुक्म ही ऐसा है।'

'हुक्म है—' हरिकुमार ने जिस भय से पूछा, उसी तरह अजीब से अंदाज से कहा, 'हूँ।' किन्तु यह वातावरण ज्यादा देर न चला, महामाया शरत् को पीटती हुई लाई और बोली—'ओ हरि कान खोल कर सुनले।'

क्या सुनूं मां?'

'मेरा और इस मुये का है बैर! जैसी बहन थी वैसा ही बना है एकदम तू मेरे ऊपर एक दया कर। हरि—मुझे सहारनपुर छोड़ आ।'

'क्यों माँ? वहां रह सकोगी।'

महामाया ने कहा, 'क्यों न रह पाऊंगी। कम से कम वहां पूजा के बर्तनों पर कबूतर बींट तो न करेंगे। तोते चोंच तो न मारेंगे। कमवख्त ने सब कुछ ही तो खराब कर दिया है। और जो हुआ है हरि वह हुआ है तेरी बहू की वजह से। हाथ डाला मोतियों के लिए और मिले सीप भी नहीं। उसने उसे ऐसा सिर चढ़ाया है कि वह सिर पर सारे घर को उछालता है।'

रेखा ने बहुत कोशिश की कि अपना संतुलन न खोयें, किन्तु जब लगा कि उसे कुछ बोलना ही होगा तो वह बहुत नम्रता से बाहर चली गई। नहीं तो हो सकता है झगड़ा हो, मां बाप को गाली मिलें।

वह पहुंची रसोई घर में। स्टोव निशि के सामने और तेल की बोतल दायें। पीछे से झूलता हुआ साड़ी का पल्ला इस तरह खूब सूरत मालूम हो रहा था, जैसे साक्षात अन्नपूर्णा हो। अन्नपूर्णा या चंडी —रेखा के दिमाग में यह विचार आया और आते ही एक जुग्यसत भावना ने जागृत होकर उसकी मस्तिष्क शिराओं को झिझोड़ डाला। वह लौट ही रही थी कि निशि ने पुकारा, 'भाभी।'

'आं—'

'अरे आं नहीं इधर तो आओ। नाराज हो क्या ?'

'नाराज।' रेखा ने कहा—'भला मैं कैसे नाराज हो सकती हूं। फिर कुछ सोचकर बोली—'एक बात कहूं निशि।'

'हां-हां कहो पर देखो—'

'देखो क्या मैं कहके रहूँगी' रेखा इतनी उत्तेजित थी कि निशि डर गई, पर जब उसने कहा कि वह एक कप काफी खुद भी पीयेगी तो निशि मुस्कराकर बोली—'मैं तो डर गई थी भाभी।'

'क्यों—'

'नन्दें भाभी से डरा ही करतीं हैं। जानती हो दिल्ली की भावजें क्या कहती हैं। सुनो—आओ नन्दिया पलंग पर बैठो। सोने की मैं छल्ली दूंगी। गोद में भतीजा दूंगी—और लड़ोमी तो, दो मूसल दूंगी।'

'धत्' रेखा बोली—'तो निशि रानी को मूंसल चाहिए।'

'नहीं—मुझे मूसल नहीं चाहिये।'

'तो फिर—

निशि ने कहा—'भाभी मुझे मूसल नहीं भतीजा चाहिये। चाँद सा टुकड़ा, फूल सा मुखड़ा' कुछ और कहे इससे पूर्व रेखा ने उसके मुंह पर हल्का सा चपत लगाकर कहा 'हट।'

'हट, कैसी भाभी। क्या मैं गलत कहती हूँ। बोलो तो—'

रेखा ने कुछ अटपटे भाव से कहा : 'छीं, निशि । तुम अभी तक क्वारी हो—और क्वारी लड़की को तो ऐसी बात करनी भी नहीं चाहिए ।'

'क्यों नहीं करनी चाहिये ?

'सो मैं नहीं जानती, हां यह तो बताओ तुम्हारा डाकखाने का काम ठीक से चल रहा है ना ।'

'बिल्कुल ठीक से भाभी, और अब तो मैं काउंटर पर आ गई। कल एक पागल सा आया, मुझे घूरता रहा । इस तरह देखता था जैसे खा जायेगा—वो तो विश्वनाथ मौजूद था, नही तो उसे पुलिस के हवाले कर देती ।'

'यह विश्वनाथ कौन है निशि ?'

'तुम नहीं जानती । निशि ने कुछ सकुचाते हुये कहा—'मैंने तुमको बताया तो था । यह है दफ्तर का बाबू । देखने में तो कमाल करता है । मेरी अकेली लड़की की नियुक्ति हुई थी । पहले दिन तो मेरी तरफ आंख तक उठाकर न देखा, मगर दूसरे दिन हजरत की आँख पर नीला चशमा था ।'

'नीला चशमा ।'

निशि ने कहा—'नीला नही काला । ताकि मुझे घूरता रहे और मैं उसे देख भी न पाऊं । जान बूझकर सामनें पड़ता था । और आजकल फ्लेट का चक्कर काटता है ।'

'अरे—

निशि बोली, 'तुम अपनी नन्द को समझती क्या हो भाभी । शहर भर को चनें चबा दूंगी, समझी ।'

'हां, लगता तो कुछ ऐसा ही, पर तूनें यह सब सीख कैसे लिये ।'

'जैसे बच्चा खाना खाना सीखता है, हंसना और बोलना सीखता है—' कहकर निशि उठी, बर्तन में करछी डाली । क्रीम निकालती हुई

बोली—'लोग हमें जादूगरनी कहते हैं ना। बूढ़ी औरतें हम से नफरत करती हैं। पर जानती हो क्यों।

इसलिये नहीं कि हम उनसे अलग हैं, बल्कि इसलिये कि कुम्हार कुम्हारी की बजाय गधों के कान ऐंठता है समझीं भाभी—जब जादूगरनी है, बदनाम हैं ही, अपनी उससे बाज क्यों आये। जानती हो मैं क्यों करूंगी।'

रेखा ने अपना प्रश्नाचक मुंह उठाया।

निशि ने कहा—'मैं बदला लूंगी भाभी—इस पुरुष जाति से बदला। तुमने ऐसे फूल का नाम तो सुना होगा जो अपनी खुशबू से भवरों को पास बुलाकर उन्हें अपने में बंद करके मार डालता है। मैं वही फूल बनूंगी, वही फूल—'

यह भी हो सकता है निशि रानी कि भंवरा रस पीकर चम्पत हो जाय।'

'सो नहीं हो सकता। समझी', किन्तु इससे पूर्व ही हरिकुमार को आवाज दी।

निशि काफी लेकर चली गई तो एक मिनट के लिए उसके दिमाग में बदले की भावना आई और एक हवा के झोंके के साथ खत्म हो हो गई। शरत् आया, उसका हाथ पकड़ कर कबूतर के उस घर की ओर ले गया। जहां पीली कबूतरीं ने अंडा दिया था।

शरत् ने पूछा—'भोला कहता था कि रात को भय माता यहां आई और चुपचाप यह अंडा रख गई। अब यह अंडा बच्चा निकालेगा! है ना।'

रेखा को हंसी आ गई इसलिये कि लोग भूत प्रेत, भयमाता वाली बात अक्सर करते हैं और इनसे किस किस तरह के विकार होते हैं, यह वह अपनी आंख से देख चुकी थी। उसने कहा—'नहीं नहीं, अंडे भयमाता नहीं लाती।'

और अस्पताल में भी बच्चे नहीं आते, नानी कहती थी कि मुझे नतिया दाई लाई थी।'

'यह गलत है।'

'तो क्या······'

रेखा ने समझाने के ढंग में कहा : 'सभी बच्चे अपनी मां के शरीर से आते हैं।'

'हां ! मैं भी ?'

शरत् ने कुछ रुआंसे होकर कहा : 'मगर मेरी ममी तो मर गई।' रेखा चुप रही, उसने फिर पूछा : 'मैं अपनी ममी के पेट में कैसे पहुँचा ?'

'डिब नाम का एक छोटा सा सेल होता है, उसी में तुम धीरे धीरे बढे थे। समझे जिस तरह बीज से फूल पैदा होता है उसी तरह जनाब सहाब नौ महीने ममी के शरीर में रहे।'

'नौ महीने—' शरत् ने छोटी छोटी अंगुली से हिसाब लगाया, 'जनवरी, फरवरी, मार्च, अप्रैल, मई, जून, जौलाई, अगस्त, और सितम्बर—इतने दिन ममी। यानी·······'

'यानी जाड़ा, गर्मी, बरसात—'

'और फिर जाड़ा।'

'नहीं' रेखा ने कहा 'जाड़ा तो पड़ना शुरू होगा।'

शरत् ने बहुत ही आश्चर्य से पूछा—'मगर मैं था कहां ?'

'गर्भाशय में।'

'गर्भाशय क्या होता है ? मेरे भी गर्भाशय है।'

रेखा ने उत्तर दिया, 'नहीं। तुम लड़के हो, तुम्हें गर्भाशय की जरूरत नहीं पड़ती। यह तो सिर्फ मां को ही जरूरी होता है। मां हमेशा स्त्री होती है और वही बच्चों को दुनिया में लाती है। तुम मां नहीं बाप बनोगे।'

'मैं पापा का बाप बनूंगा ना ?'

'हट—' रेखा इतना ही कर पाई थी कि महामाया की कर्कश आवाज सुनाई दी। वे कह रही थी—'अरी ओ रेखा, वहीं चढ़ी रहेगी, कुछ रसोई वसोई का भी ख्याल है।'

'आई अम्मा जी', रेखा रसोई की तरफ दौड़ पड़ी।

रसोई में आकर रेखा बैठी ही थी कि निशि ने आकर कहा, 'भाभी, सुनो वह बैटा है।'

'कौन ?'

'अरे वही तो विश्वनाथ।'

'विश्वनाथ !'

'हां—भैया को अपना दोस्त कहता है। एक दम दोस्त—'

ऐ भाभी, जरा जुर्रत तो देखो।'

रेखा ने बाहर से देखा : आज के जमाने का बहुत ही नम्र किन्तु साधारण सा युवक, उस श्रेणी का युवक जहां समझ के नाम पर अच्छी नायिकाओं के नाम, अफसरों के नाम पर मस्का ही समझा जाता है, विश्वनाथ बैठा था, बहुत चुप, बहुत शान्त। निशि भीतर गई। रेखा देखती रही। किस तरह उसके सपने थे। शायद स्थिति अनुकूल बनाना रेखा को इतना न भाता था।

: १२ :

और सचमुच निशि उसके लिए समस्या थी।

दिवाली का दिन खुशी का नहीं तो गम का भी नहीं बीतना चाहिये। कमबख्त त्यौहार ही कुछ ऐसा है कि उल्लास उमड़ पड़ता है। किन्तु रेखा के दिमाग में आज सिर्फ निशि थी, जो सारे दिन हरिकुमार के साथ रही। हंसती, हंसाती, दुलारती, थपकती निशि

हरिकुमार के साथ रही। अब जब अंधकार तथा प्रकाश के संघर्ष में टिमटिमाते दीप हथियार डाल चुके थे तो उसे एक ऐसा अन्धकारमय अवशेष दीख पड़ रहा था—जिस में एक दीप नहीं, किरण की एक पांत तक नहीं थी।

बिलकुल ऐसा ही अंधकार तथा घटाटोप आच्छन्न वातावरण था और इससे ज्यादा सन्नाटा।

दो चार टिमटिमाते दीप बाकी सब अंधेरा। उसने जान बूझ कर बत्तियां जला दी थीं। इसलिए कि कहीं हरिकुमार की याद करती-करती ऊंघ कर सो जानें वाली महामाया उठकर न डांट दे। शरत् सो चुका है, श्याम कृष्ण दिल्ली में हैं नहीं। एक कमरा है बहुत छोटा, बहुत प्यारा। वहीं आहोई के दिन महामाया नें पुत्रवती होने के नाते 'अहोई, मां की अजीब सी तस्वीर बनाई गई थी। उसी के आगे लक्ष्मी की तस्वीर है। इसके आगे जलने को प्रस्तुत—दीप है और थाली भरे खील, बताशे। सिर्फ हरिकुमार की प्रतीक्षा है और रेखा जाग रही थी। उसने जान बूझकर निशि को विदाकर दिया था।

अगर सोना चाहती तो भी नहीं सो सकती। इसलिये की विवाहित जीवन की यह पहली दिवाली थी और उसे उस भिखारी की याद आती थी जो उस रोज गा रहा था। 'आज नहीं तो कल हट जायेंगे ये बादल एक टिमटिमाती आशा है, जो न जाने कब प्रज्वलित हो उठे—कब प्रकाश की रेख दीख पड़े। उसने आकाश की ओर देखा—बादलों के झुंड से तारे दमक रहे थे। बहुत प्यारे बहुत छोटे; गगन के दीपों की तरह। किन्तु देर तक न देख पाई। एक टक्सी फ्लेट के आगे खड़ी हुई और जो उसमें से आया, वह उससे परिचित थी।

आगे बढ़ कर बोली—'कौन प्रबोध ?'

'हां मैं ही हूँ जीजी, बिस्तर तो तैयार करो और कोई नौकर हो तो उसे भी बुला लो।'

'यह सब क्यों ?'

प्रबोध ने बहुत तेजी से कहा, 'बहस मत करो जीजी। जैसा कहता हूँ करो।'

पांच मिनट बाद बिस्तर पर हरिकुमार था। महामाया हाथ पकड़ रही थीं, रेखा तलवे सहला रही थी और प्रबोध प्रारंभिक चिकित्सा कर रहा था। कोई खास बात नहीं थी। किसी नशीली चीज के उपयोग से सुध जाती रही थी। उसी को पुनः प्राप्त करने के लिए ही यह उपचार था। किन्तु बाद को मालूम हुआ कि किन्हीं दो सिक्ख लड़कों ने यह दशा की है।

हरिकुमार के होश में आते ही प्रबोध ने महामाया के साथ साथ रेखा से विदा मांगी।

महामाया ने पूछा, 'वाह, ऐसी भी क्या जल्दी है। बैठो बेटा, कुछ खाना पीना तो हुआ ही नहीं।'

रेखा ने कहा—'हां, अब तो खाना ही खा कर जाना होगा, और यह भी बताना होगा कि कब से आये हुये हैं जनाब।'

'एक सप्ताह हुआ है, जीजी। पर खाना मैं न खा सकूंगा।'

'क्यों न खा सकोगे। जरा सुनूं तो ?'

प्रबोध ने कहा—'यही तो एक बात है जो पढ़ लिख कर लड़कियां भूल जाती हैं। भला भाई बहिन के यहां का कुछ खाता है।'

'अच्छा बाबा, खा लो, पैसा, दे देना।'

प्रबोध कुछ कहे, इससे पूर्व ही हरिकुमार की हालत जानने के के लिए वहां निशि ने प्रवेश किया और उसे देख कर बोली—'आप।'

'हाँ मैं—मेहमान हूँ। अब शर्म नहीं रह सकती।' कह कर वह रेखा को यह समझाने चला गया कि वह खाना नहीं खायेगा और इसके बाद फिर कभी आने का वायदा करके विदा ले गया।

अब तक सूर्य प्राची के गर्भ में ही था कि उसी सरदार ने अपने दोनों लड़कों के साथ प्रवेश किया क्योंकि रेखा ही सबसे पहले सामने पड़ी थी, उसके पांवों में पड़ गया।

'यह क्या बाबा ?'

'माफ कर दे पुत्री। सानू इस बेला तूसी माफ कर दें—······ किन्तु रेखा को क्यों कि हरिकुमार का डर था, महामाया का डर था झटपट वह वहां से भाग खड़ी हो गई। सरदार ने पहले महामाया के पांव पकड़े, फिर हरिकुमार से इस बात पर बहुत खेद प्रकट किया कि उसकी वजह से ही उसे इतना कष्ट झेलना पड़ा है। वह तो पका पेड़ है न जाने कब टूट पड़े। किन्तु उसके साथ जो ये दो लड़के हैं—जो इस दुनियां में कदम रखने वाले दो इन्सान हैं, वे इतने ना समझ और अनुभवहीन हैं कि उन्हें माफ करने के अलावा कोई और चारा नहीं है।

क्यों कि सरदार गिड़गिड़ा रहा था, उसकी सफेद डाढ़ी से विवशता झांक रही थी और क्यों कि वह अच्छी खासी रकम देकर भी फैसला इसलिए कर लेना चाहता था कि कहीं वह अलाट की हुई जमीन खत्ते में न पड़ जाय, इसलिए उसे माफ कर दिया गया।

सरदार चला गया। समस्या चली गई। किन्तु चोटों के निशान अभी भी शेष थे। बिस्तर पर लेटे रहने की आवश्यकता थी, क्योंकि जब वह बिस्तर पर हो तो निशि कहां जाय, इसलिए इसी बीच रेखा को जो अनुभव हुए, वे कम कटु नहीं।

गोबरधन पूजा एक छोटा सा उत्सव होता है। शाम को पूर्ण राष्ट्र हितकारी गोबरधन की पूजा की जाती है और क्योंकि यह दीप जलने के

याद होती है इसलिए उस समय तो बहुत कुछ संभव हो सकता है।

रेखा ने देखा, अगर कहीं जमीन में समा लेने की क्षमता रखती तो शायद वह उसमें समा जाती। किन्तु वह उसमें नहीं समा पाई—जिन्दा रही और उस सुबह जो कि भैया दूज की पावन स्मृति से बहुत ही मधुर हो गया था उसके दिमाग में सैंकड़ों आत्म हत्याओं का ख्याल हो आया।

किन्तु अक्सर इन्सान को जिन्दा रखने के लिए एक टिमटिमाते से आशा दीप की ही जरूरत होती है। भोर के पहले अवतरण में ही वह बूढ़ा भिखारी फिर आ निकला। वही प्रभाती स्वर प्रबोधनी में सोये हुओं को जगाता हुआ फूट निकला। और रेखा के पूरे मस्तिष्क को झिझोड़ गई। जैसे कुछ हुआ ही न हो। वह उठी, स्नानागार में गई और बहुत देर तक वैसे ही पानी बखेरती रही। वहीं उसने प्रबोध की आवाज सुनी।

प्रबोध—यानी लखनऊ का, उसके जन्म स्थान का एक और प्राणी।

प्रबोध, यानी उसे जीजी कहने वाला एक भाई—और वह एक बहन। और आज तो भैया दूज है, बहुत ही महत्वपूर्ण दिन। वह वैसी ही साड़ी लपेट कर आई और प्रबोध को बिठाल कर बोली—'आधा घण्टा तो इन्तजार कर सकोगे ना।'

'हां, हां—'

फिर उसे याद आया कि तिलक करने से पहले माहामाया से पूछना होगा अगर उन्होंने कहीं मना कर दिया तो। और सचमुच हुआ भी ऐसा। महामाया ने साफ मना कर दिया, 'क्यों कैसी रोटियां हजम नहीं होती क्या? घर का मालिक बीमार पड़ा है और तुम हो कि गुलछर्रे उड़ाने की सोच रही हो, वाह!'

रेखा ने साहस बटोर कर कहा: 'गुलछर्रे कहां अम्मा जी, यह तो शगुन होता है ना!'

'तो फिर मुझ से क्यों पूछती हो जाओ ?'

रेखा चुप रही। सास की बताई हुई सीमाओं को लांघे, इतनी हिम्मत उस में नहीं थी। हुआ यह कि पूरे एक घंटे इन्तजार करके वह लौट गया। मगर एक संतोष यह देखकर जरूर हुआ कि हरिकुमार और प्रबोध के सम्बन्ध अच्छे हैं। संभवतः वह फिर आये।

शरत् की समस्या पूर्ववत ही रही। रेखा उसे प्यार से स्कूल भेजती किन्तु अब तक यह नहीं समझ पाई थी कि आखिर गलती कहां पर है।

शरत् साधारण प्रतिभा का ही सही बुद्धू नहीं था। और न ही उसमें कोई ऐसा अवगुण था जो उसकी समस्या को सुलझाने मैं सहायक हो। किन्तु एक दिन ऐसी स्थिति आ गई कि जब उसने स्कूल और घर से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया।

दिसम्बर का एक बहुत ही ठन्डा प्रभात था। दस बज चुके थे। किन्तु हवा इतनी तेज थी। सूरज इतना ठन्डा था कि कुछ ठीक से नहीं जान पड़ता। शरत् को कुछ देर पूर्व ही उसने बड़े उल्लास से स्कूल भेजा था कि मिस उमलागर उसे लेकर उपस्थित हो गई।

पहली बार मिस उमलागर को देखकर इसके दिमाग में एक अध्यापिका की नहीं बल्कि सिने तारिका की कल्पना पैदा हुई। बहुत ही तीखे नक्शे, उससे तीखा स्वभाव और सबसे तीखे आंख में घुल जाने वाले रंग — जिसमें न अध्यापिका का रूप था और न मां का। हर स्त्री बहिन होती है, मां होती है यह संभावना जाती रही।

उसने आकर बताया कि वह आखिरी बार सिर्फ शरत् के लिए आई है। वरना अब स्कूल के प्रधान उसे स्कूल में नहीं रख सकते।

'क्यों ?'

'इसलिए कि वे इसे स्कूल में रख कर तमाम स्कूल को गंदा नहीं कर सकते।'

महामाया ने पूछा—'क्यों जी और कोई ढंग भी है क्या ?'

'शायद नहीं।'

'रेखा ने आकर कहा,—'शायद हां !'

'आप यह कह रही हैं ! मेरी बात काट रही हैं मैं उसकी क्लास टीचरर्स हूं।'

रेखा ने कहा—'और मैं उसकी सब कुछ हूँ। मैं जानती हूं कि वह बुद्धू नहीं है।'

'मगर शैतान तो है।'

रेखा ने कहा—'बच्चे का शैतान होना उसकी सक्रिय भावना का प्रतीक है। जो बच्चा आज शैतान है, वह कल बहुत प्रतिभाशाली भी हो सकता है।'

'मगर यह नहीं हो सकता।'

रेखा को जैसे किसी ने थप्पड़ मारा हो।

बोली, 'क्यो, क्यों नहीं हो सकता। इसलिए कि आप उसके द्वारा कोई', जाने क्या कहने जा रही थी कि एक पत्थर मिस उमलागर की आंख के ऊपर से टकराया और माथे पर दो बूंद रक्त निकाल कर नीचे गिर पड़ा।

महामाया ने रेखा की तरफ देखा और क्रोधित रेखा एक दम मोम होकर मिस उमलागर की मरहम पट्टी में लग गई। बहुत ही लज्जित भाव से मिस उमलागर को विदा किया। और फिर शरत् की खोज में निकली। मछलियों के छोटे से ताल के पीछे वह चुपचाप नया पेड़ लगा रहा था कि रेखा को देखकर खड़ा हो गया।

'इधर आओ।'

शरत् ने रेखा की यह मुद्रा शायद ही कभी देखी होगी। वह कांप उठा। रेखा ने फिर कहा—'इधर आओ, सुना नहीं।'

शरत् न देखा रेखा के हाथ में वही डन्डा था जिसे एक दिन उस ने महामाया के हाथ से छीना था। वह रो उठा, 'माफ करो मामी अब नहीं करूंगा।'

'तू चलता है कि नहीं।'

'चलता हूं मामी—'कह कर वह तेजी से दौड़ कर रेखा के कमरे घुस गया। और रेखा थी उसके पीछे-पीछे। डन्डा अब भी उसके हाथ में था। शरत् हाथ जोड़ कर रो धो कर प्रार्थना कर रहा था कि अब वह ऐसा नहीं करेगा। किन्तु रेखा को तो जैसे खून सवार था। आखिर उसने उसे पकड़ लिया और पकड़ लेने के बाद उसके दोनों हाथ पकड़ कर जोर से चांटा जड़ दिया।

शायद रेखा का जिन्दगी में पहली वार हाथ उठा था। वह खुद कांप रही थी, और संशय में थी कि क्या वह किसी को मार सकती है। किन्तु जैसे ही उसका एक हाथ उठा—शरत् का मुंह फिर गया। वह जोर से रो उठा, 'मामी !'

किन्तु वह उसे पीटे जा रही थी। बहुत ही हक्की बक्की महामाया ने भोला को बुलाकर भीतर भेजा। बड़ी कठिनाई से वह शरत् को बाहर लाया। किन्तु रेखा भीतर रही। पश्चाताप के सागर में थपेड़े खाती हुई वह एक दम निस्सहाय हो गई थी।

एक घंटे बाद हरिकुमार ने दरवाजा खोला। वह अपेक्षाकृत नर्म था। आकर उससे सट कर बैठना चाहता था कि वह खड़ी हो गई।

'बैठो'

वह बैठी तो हरिकुमार ने कहा—'मां कहती हैं आज आज तुमने अपना चोला ही बदल डाला है।'

'हां !'

'तो इस तरह मुंह क्यों फैलाये हो। जानती हो आज तुम्हारे भाई मिले थे—प्रबोध !'

'प्रबोध ।'

'हाँ ! भई बहुत ही मिलन सार। तुमको सच मायनों में अपनी बहिन समझता हैं।'

रेखा का सिर गर्व से तन गया। वह कहना चाहती थी; क्यों न समझेंगे—आखिर हैं तो मेरे भाई ना !' मगर वह चुप रही। बिल्कुल चुप। हरिकुमार ने कहा—'आज उसने मेरा परिचय बहुत ही प्रगतिवादी लोगों से कराया, और देखा यह निमंत्रण है, शाम को चलोगी ना।'

सहमतिपूर्ण रेखा का सिर हिला, तब ही बाहर से निशि ने पुकारा, 'क्या घुल घुल के बातें हो रही हैं, भाभी यहां कर दिया ना इन पर जादू ?'

रेखा का मन मूक हो कह उठा, 'जादू तो तुम्हारा है' किन्तु उसनें कहा—'आओ ना बैठो।'

रेखा जाने लगी तो निशि ने पूछा—'कहां चली ?'

'नन्दरानी को चाय पिलानें।'

'शाबास, अब तो समझदार होती जा रही हो।'

रेखा ने कहा—'वक्त सब को समझदार कर देता है, रानी !' कह कर वह चाय बनानें चली गई।

चाय पर निशि ने बताया कि विश्वनाथ ने उसे खत लिखा है।

'खत.......'

निशि की हंसी फूटे जा रही थी, 'ये मर्द तो अव्वल दर्जे के मूर्ख होते हैं लिखा है : मिस निशि।'

'सिर्फ मिस निशि।'

'अरे नहीं, जो विशेषण उन्होंने लगाये थे वे तो मैं याद नहीं रख पाई। और रख भी कैसे सकती हूं मैंनें आज तक सुने ही नहीं!'

रेखा नें पूछा—'सुनें नहीं तो क्या पढ़े भी नहीं?'

'कहां पढ़ती उपन्यास में, मुझे तो भाभी उपन्यास से कुछ ऐसी चिढ़ है कि बस। हां लोग कहते जरूर हैं कि ऐसे सम्बोधन विशेषण उपन्यासों में ही होते हैं।'

हरिकुमार नें एक जज की भांति कहा, 'मगर लिखा क्या है? कोई शादी-वादी की बात है क्या?'

निशि नें कुछ लजाकर कहा—'और क्या होगी।'

'और तुम्हारी क्या मर्जी है?'

उसने मौन स्वीकृति के साथ कहा—'मैं कौन होती हूं, बोलने वाली।'

रेखा ने चुटकी मार कर कहा—'रानी तुम न बोलो, मैं बोल दूंगी।'

निशि ने लजा कर कहा—'धत् तेरे की।'

: १४ :

तय यह हुआ कि निशि के आश्रय दाता दीवान चन्द को समझाने का काम हरिकुमार करे। किन्तु उसमें साहस कुछ नहीं था। चलता चलता रूक रहा था कि प्रबोध आ गया।

हरिकुमार ने कहा—'कैसे हो प्रबोध?'

'ठीक हूँ, जीजा जी।'

'जीजा जी! तुम भी गंवारू बात करते हो। मैंने तुम्हें साला कब कहा है?'

'न कहो—पर इससे इन्कार भी तो नहीं कर सकते—'

हरिकुमार ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—'हो गया इन्कार। आओ तुम्हें ट्रेनिंग दें।'

'काहे की ट्रेनिंग ?'

'अरे प्रेम के बाद ब्याह की होती है। आओ तो।' कहकर वह उसे सामने वाले फ्लेट में ले गया जहां दीवानचन्द बैठे हुक्का पी रहे थे और उनकी पत्नी अपना पोपला मुंह फुलाये निशि के कारनामे सुना रही थी।

दीवानचन्द ने कहा—'ओह, हरि यह कौन !'

ये लखनऊ से आये हैं।'

'तेरा साला है ?'

हरिकुमार कह गया, 'नहीं—दूर से···'

दीवानचन्द बोले, 'दूर से पास से क्या, हैं तो साला है। बैठो भाई बैठो ! अरे निशि—शरबत ला दो गिलास !'

'शरबत—'

दीवानचन्द अपनी मूर्खता पर खुद हंसे। बोले—'शरबत, नहीं, निस्सो चाय बनाना !'

चाय पर इधर उधर की बात चलीं और यह तय पाकर कि एक दिन विश्वनाथ को वह ले आयेगा और दिखा देगा। हरिकुमार लौट पड़ा।

'अब ?'

'आओ मेरे साथ' कहकर प्रबोध उसे एक फिल्म शो दिखाने ले गया और वहीं उसके दिमाग में ऐसी बातें भरने की कोशिश की जो अब तक उसे छू भी न पाई थीं।

फिल्म समाप्त होने पर वह हरिकुमार ने कहा—'अब घर चलो।'

'हरगिज नहीं !'

,क्यों ?'

'ऐसे ही।'

हरिकुमार जो न जाने क्यों इस पर फिदा सा हो गया था, हाथ में हाथ डाल कर बोला, 'क्यों नहीं चलोगे ? क्या समय नहीं ? अगर नहीं है तो बताओ।'

प्रबोध ने कहा, 'समय तो चलता ही रहता है, जनाब, मगर आज नहीं। क्योंकि आज इस चित्र ने मुझे कुछ उदास बना दिया है।'

'उदास ?'

'हां' प्रबोध ने कहा—'हमारी समझ में यह नहीं आता कि कब तक हम औरत को पांव की जूतियां, जादूगरनी और दास समझते जायेंगे। जब कि वह मां होकर प्रसव देती है, बहन होकर स्नेह लुटाती है। अन्नपूर्णा और जगतदात्री का वह रूप जिसे हम अब तक सिर्फ किताबों में ही पढते आते हैं, क्या कभी साकार नहीं होगा ?'

हरि हंसा, 'बस हम समझ गये, तुम बड़े भावुक हो।'

'हां—भावुक हूँ तभी तो यह सोच लेता हूँ। मगर भावुक है कौन नहीं। एक आदमी भावुक होकर पत्नी पर अत्याचार करता है, उसे निकम्मा और नालायक कह कर इस धरती को स्वंय नारी का एक रूप है; दुनियां भर के निकम्मा काम करता है। दूसरी ओर आजादी की लड़ाई में सीना तान कर खड़ा होना भी तो भावुक लोगों का काम है।'

हरिकुमार ने कहा—'आप ठीक कहते हैं जी। भावुक होना ही चाहिये !'

'चाहिये नहीं होना है। हर इन्सान अगर इन्सान कहलाने का हक रखता है तो उसके शरीर में एक दिल नाम की चीज होती है। डाक्टरी दिल नहीं, जिसकी धड़कन दिखाकर फिल्मी कथानक रोमांस प्रदर्शन हैं, वह दिल नहीं। दिल से मेरा अभिप्राय उस प्रेरणा से है,

सोचने समझने की शक्ति से है जो हर प्राणी में करीब करीब एक मात्रा में होती है। यह मेरी कमजोरी है, कि जहां विरोधाभास होता है, वह्व एक क्षण भी ठहरना दूर्भर हो जाता है। एक क्षण के अन्दर ही मेरी एक एक नस टूटने लगती है।'

इशारा किस ओर है, हरिकुमार समझ गया था। बहुत ही उतावले पन से उसने हाथ मिलाकर कहा : 'ठीक है। अच्छा तो फिर मिलेंगे।'

अगली बार वे मिले तो विश्वनाथ उनके साथ था। तीनों में कुछ दोस्ती पूर्ण बातें हुईं और बिछुड़ गये।

: १५ :

उस दिन न जाने हरिकुमार के मन में किस तरह के विचार उठे कि उसका हृदय रेखा के लिये प्यार से पल्लवित हो उठा। उसके दिमाग में अजीब अजीब सी बातें घूम रही थी और इस कदर तेज होकर कि वह आते ही सीधा रेखा के पास गया। रेखा अभी-अभी महामाया की डांट खाकर चुकी थी और इस निष्कर्ष पर आई थी कि यदि आदमी बुद्धिवादी न हो, समझदार न हो तो शायद इतनी समस्या में न हो।

उसने शादी के कुछ दिन पहले बहुत से उपदेश सुने थे। बहुत सी किताबें पढ़ी थीं और उनसे वे सब बातें लेने की कोशिश की थी जिनसे चतुर ग्रहणी बन सके। इसी के फलस्वरूप उसने वहुत से मेज-पोश और इसी तरह के कढ़ाई सिलाई के काम कर लिये थे।

आज वह चाहती थी कि महामाया देखे और प्रशंसा करे। किन्तु उसने जो कहा वह शायद कम ही सासें कह पाती हैं, उसने देखा, परखा

और कुड़मुड़ाती हुई बोली : 'ठीक है, घर सजाओ। कोई काम न हो तो दिन भर इस तरह के ऊट-पटांग काम करती रहो।'

रेखा रो दी। उसकी इतनी मेहनत और इतनी अवहेलना। वह उन्हें सहेज कर रख रही थी कि हरिकुमार आ पहुँचा, आते ही बोला—'यह सब क्या है।'

उसने वे सब उठा कर कहा—'देखिये।'

'फस्ट क्लास।'

रेखा ने कुछ संशय से पूछा—'सच।'

'तुम्हें शक क्यों हुआ क्या मैं झूठ भी बोल सकता हूँ।'

'नहीं, मजाक भी तो कर सकते हो।'

कुछ और बात हो भोला ने आकर कहा : जो है सो, छोटे बाबू—जो है सो...'

'जो है सो, कुछ कहो तो ...।'

भोला ने कहा, 'जो है सो, बड़े बाबू बुलाते हैं।'

'चलो।' वह जाते जाते रेखा से कहा गया कि आज शाम को घूमने चलना होगा। इसलिये तैयार रहे। रेखा ने आइने की तरफ देखा। सूजी हुई आंखें—जो कभी म्लानहीन कमल की पुतलियों की नील झील में तैरती रहती थी। उनकी कोरों पर दो कालिमापूर्ण पहाड़ियां, अर्थात कालिमामय रेखायें उभर आई थीं। जो चरित्र-हीनता की प्रतीक होती हैं। एक भयानक तूफान की तरह उसके दिमाग में छा गया। 'तो क्या वह चरित्रहीन है।'

'जो है सो—' भोला ने आकर कहा—'सुनती हो बहू शरत् बाबू कबूतरों को मार रहे हैं।'

'क्या'

भोला ने बताया, 'उसमें बेहद गुस्सा है बहू जी। तुमसे पिट चुका है ना, उसका बदला उन पर उतार रहा है।'

'चल तो।' रेखा ने आकर उसे कान से पकड़ा। अपने पास ले आई। आज पहली बार उसने श्यामकृष्ण के कमरे का दरवाजा खुला पाया था और बड़े बाबू श्याम कृष्ण यही हैं इसका उसे अनुमान हो गया था।

शरत् की एक प्रवृत्ति थी। वह अक्सर पत्थर हो जाता था और यही आज हुआ। किन्तु जैसे ही वह रेखा के सम्पर्क में उसकी आदत थोड़ी सुधार की ओर चली गई। वह बोला कुछ नहीं चुपचाप रेखा को देखता रहा।

'क्यों' रेखा ने उसके दोनों हाथ कसके पकड़े और पूछा—'बोल मरना चाहता है क्या मरेगा—बोल—मरेगा।' जैसे यह आवाज उससे नहीं, एक अन्तराल एक पाताल को तोड़कर—बरसाती झरने की तरह उबल पड़ी।

शरत् चुप, उसने फिर पूछा—'बोलता क्यों नहीं, मरना भी चाहता है क्या।'

'मरने के बाद ममी मिलेंगी क्या ?' बहुत ही बुद्धिमानी से, बहुत ही समझदारी से शरत् ने पूछा और रेखा एक दम चुप, एकदम पत्थर हो गई थी। यकायक थाह में पहुँच गई, जो बात अब तक उसके लिये अज्ञेय थी, अनबूझ थी। वह यकायक सुलझ गई और उसे लगा जैसा कमरे का पंखा, बाहर हवा से झूलते हुये पेड़ के पत्ते और शरत् के फड़फड़ाते हुये ओंठ कर रहे हों—प्यार, प्यार, प्यार।

प्यार···रेखा को देख शरत् उसके पांवों में पड़ा है और वह उसकी आंख जिस पर कालिमामय पहाड़ी उभरी थी, जो निस्तेज हो चुकी थी न जाने क्यों सावन भादों की कजरारी बदली की तरह उमड़ पड़ी और शरत् के पूरे मुंह को भीगो डाला।

उस रात हरिकुमार फिर अपनी प्रवृति के अनुसार निशि को

लेकर घूमने चला गया और उसे आंसुओं में घुलने के लिये छोड़ गया। किन्तु आज उसके दिमाग में ईर्ष्या नहीं—एक मुक्ति की भावना थी।

बाहर दूधिया चांदनी खिली थी और कमरे में नीलिमा का प्रगाढ प्रकाश झनझना रहा था।

रेखा ने शरत् को उठाकर कहा—'लो दूध पीयो।'

'नहीं नहीं—मैं दूध नहीं पीऊंगा।'

'क्यों—' रेखा कुछ झिझकी, फिर अजीब सी आवाज में बोली, 'जानते हो जो दूध नहीं पीते तो क्या होता है ?'

'क्या होता है ?'

'वे बुद्धू होते हैं। उनका माथा चौड़ा होता नहीं और जानते हो उनकी मा रूठ जाती है।'

'मां—पर—' शरत् ने अचकचा कर पूछा—'तो क्या तुम मेरी मां हो जो रूंठोगी ?'

रेखा चुप। किन्तु हृदय रिक्त नहीं था। सोचती थी मां क्या होती है बच्चे की जो उसे इतनी जरूरत होती है। उसने उसे जबरदस्ती किसी तरह दूध पिलाया, मुंह पोंछा और फिर जाते जाते बोली—'लो सो जाओ।'

'अकेला ही।'

'हां बहादुर लड़के अकेले ही सोते हैं।'

'मगर शरत् ने उसका आंचल पकड़ कर कहा—'एक कहानी सुना दो ना। तुम को तो ढेर सी कहानियां आती हैं, हैं ना ?'

'हां'

और जब रेखा कहानी सुना कर उठी तो शरत् सो चुका था। इस बीच उसने एक छाया कमरे के बाहर घूमती फिरती देखी थी। वह

निकली तो बराबर का कमरा खुला पाया। श्याम कृष्ण खाली पलंग पर बड़े ही उदास भाव से बैठे थे। रेखा ने देखा—कोई खास उम्र नहीं, कोई खास प्रौढता के चिन्ह नहीं, फिर भी अनायास झलक आने वाली एक ऐसी उदासी थी जो बादलों का बरसना छीन ले, हवा का चलना चुरा ले और इन्द्र धनुष के सातों रंगों को मिला कर मिट्टी कर दे।

औरतें पति के मरने के बाद विधवा हो जाती हैं। सिंगार पटार नहीं करतीं, गैर मर्दों से बातचीत नहीं करतीं, किसी शुभ कार्य में हिस्सा नहीं लेतीं—खास तौर से हिन्दू परिवार की सती भारतीय औरतें।

और नीलिमा के मर जाने के बाद श्याम कृष्ण विधुर न हुये, विधवा हो गये। बहुत ही उदास, रूखे, खोये खोये से और एक दम चुप रहने वाले—लापरवाह आदमी। इसके पीछे एक इतिहास है, लापरवाही और असावधानता का इतिहास।

ज्यादा वर्ष नहीं बीते जब उन्होंने नीलिमा से स्वयं दोस्ती की थी, बिलकुल फिल्म के नायक की तरह, झिझक और उदास, उत्फुल और बेचैन होकर।

और नीलिमा ने देखा एक परदेशी—कुछ चूड़ियों में, मनुहार में, कुछ खिलती उठती मुस्कान में उसका कौमार्य खरीद लेना चाहता है, सौदा करना चाहता है। वह कुछ कटी सी, जिस तरह से लकड़ी सी कटती है, सहम गई और फिर दाँत किटकिटा कर, मुट्ठी भींच कर फैसला किया कि वह यह सौदा कभी नहीं करेगी, कभी नहीं। किन्तु औरतों की बात के लिए सहारनपुर में ही नहीं अक्सर हर जगह यह मशहूर है कि औरत स्वयं एक पहेली है। यानी औरत जो कहती है वह नहीं करती और जो करती है वह कहती नहीं। यानी जो उसने सोचा वह नहीं किया और अनजाने ही आत्म समर्पण कर बैठी।

शादी हुई, ब्याह हुआ, गृहस्थी बसी और धीरे-धीरे एक अजीब सी

शीथिलता, रोमांस की अस्थिरता का मूल स्रोत लेकर बहने वाली ठण्डी बयार के एक झोंके से उड़ गया। एक अजीब सी लत किन्तु बहुत बुरी लत श्याम कृष्ण को पड़ गई थी और वह थी शराब।

शराब ने नीलिमा की जान ली, शराब ने शरत् का प्यार लूटा, मातृत्व छीना और शराब जो अब भी कभी-कभी श्याम कृष्ण के कमरे में पदार्पण कर जाती है, वह न जाने क्या क्या कर गई।

नीलिमा मरी नहीं थी, उसने आत्म-हत्या की थी। यह बात दूसरी है कि डाक्टर ने दिल की गति बंद होने का सार्टिफिकेट दे दिया, किन्तु उसने की आत्म हत्या ही थी। अब भी जब कभी श्याम कृष्ण को वह मनहूस रात याद आती है, उनका सारा बदन कांपने लगता है और मानसिक पीड़ा से दुःखी शारीरिक भूख से उद्धृत रात रात भर बिस्तर पर काट देते हैं, और जब बेचैनी बढ़ती है तो जिन्दगी को रात के हवाले कर टार्च जलाये, छड़ी खटखटाते घंटों उद्यान में घूमते रहते हैं। घंटों टार्च से मछलियों को, बत्तखों और कबूतरों को देखते रहते हैं।

किन्तु यह मनहूस शाम थी—शरत् की पहली वर्ष गांठ। आखिर दोस्त ही तो थे, लाडले का जन्म दिन हो और ओंठ भी गीले न हों, छीं, छीं – शराब छोड़ दी तो क्या है। एक दिन में आदत थोड़े ही पड़ जाती है और पी ही ली है तो क्या कम और क्या ज्यादा।

शाम को पीकर रात को खुमार में लौटे। नीलिमा सोचती थी लौटेंगे तो शरत् को चूम-चूमकर सुला देंगे,फिर वे घंटों तुलसी के चोरे के पास बैठे मद्धिम रसपूर्ण चांदनी में बैठे बैठे कामनाओं में खो जायेंगे। कैसा प्यारा होगा, कितना सुन्दर रहेगा। किन्तु मिली लड़बड़ाहट, चुप हो जाने की धमकी और आंसू। क्रोध से उसके दांत बज रहे थे। वह कपड़े भी फाड़ सकती थी, बाल भी नोंच सकती थी, और मर भी सकती थी। मरने की धमकी उसने दे ही डाली। सुबह जब श्याम कृष्ण होश में आये तो उनके लाख माफी माँगने पर भी उसने नाश्ता नहीं किया और

इस बात पर चुप्पी तोड़ी कि इस बार घर में शराब का मुंह आया तो वह फांसी लगा लेगी।

श्याम कृष्ण ने वायदा किया, वह शराब नहीं पीयेगा। पीना तो दर-किनार वह छूयेगा तक भी नहीं। शराब क्या हुई जो नीलिमा नहीं है। आखिर औरत भी तो शराब है।

'जाओ—' नीलिमा के ओंठ पंखुड़ी की तरह खिले और मुंद गये। उसने चेतावनी दी, 'तुम मेरी मरी का मुंह देखोगे।'

'क्यों देखूंगा ?'

'इसलिए कि पीकर आओगे।'

'और अब पीकर' श्यामकृष्ण बुरी तरह हंसे। किन्तु रात को लौटे तो पीये हुये थे। उन्होंने अपना वायदा पूरा नहीं किया, किन्तु नीलिमा में इतनी व्यवहार कुशलता कहां। उसने एक बार शरत् को देखा, एक बार आइने में अपने चेहरे को और एक बार अपने शराबी पति को। तिलमिला कर ब्लेड से जो गर्दन काटी—कि भोर की पहली किरण ने श्याम-कृष्ण को विधुर कर दिया। इतना ही नहीं शरत् अनाथ हो गया था। किन्तु उसके दिमाग में मां की याद न जाने क्यों टकराया करती है।

रेखा ने देखा शांत, पुष्प पातों के बीच श्याम कृष्ण टार्च जलाये, छड़ी खटखटाता चल रहा है। सहसा रेखा ने सुना—'कौन ?'

उसका कलेजा धक-धक करने लगा। पहली बार इतनी आक्रोशमय आवाज श्याम कृष्ण के मुंह से उसने पहली बार ही सुनी थी। उसकी हिम्मत हुई कि वह पीछे मुड़कर देखे श्याम कृष्ण ने चीख कर कहा : 'निशि तुम जाओ''''और तुम हरि मेरे साथ आओ।'

रेखा दौड़ पड़ी, किन्तु आवाज अब भी स्पष्ट सुनाई दे रही थी। श्याम कृष्ण कह रहे थे—'जबाव दे हरि—तू आदमी है या जानवर !'

'इन्सान'

'खूब इन्सान है ! क्या कहने हैं, इन्सानियत के। यही इन्सानियत है कि घर की बहू को छोड़ कर वेश्याओं के पीछे पड़े।'

हरि ने चीखकर कहा : 'निशि वेश्या नहीं है। वह मेरी बहिन लगती है।'

'राखी भी बांधती है। उस राखी को उछालना ही तेरी इन्सानियत है ?'

'जीजा जी', हरि ने चीख कर कहा, 'बेकार की बहस मत करो। जिस तरह शराब पीने में तुम आजाद हो उसी तरह...।' आगे रेखा न सुन पाई। कितनी थरथरा देने वाली आवाज थी। वह पत्थर होकर सब सुन रही थी। जैसे इसके अलावा और कोई चारा न हो। उसने सुना, हरि कहता कहता चुप हुआ। पैर पटकता हुआ निकला और शेर की तरह उसके कमरे में दाखिल हुआ। बहुत ही सिमटी सी रेखा खड़ी थी। आते ही उसनें पूछा—'तुम दूसरे कमरे में सो सकती हो।'

'जी'

'बोलो सो सकती हो ?'

रेखा मौन रही तो उसने कम्बल और तकिया उठाया। जाते-जाते बोला—'मैं खूब जानता हूँ, खूब' रेखा की हिम्मत न हुई कि वह उसे रोक ले।

दूसरा खण्ड

प्रबोध

अनुकृति, आवृति

और

खन्दक के तारे

'पुण्य करने से देवता और पाप करने
से राक्षस की योनि प्राप्त होती है
किन्तु
जो प्यार करते हैं वे इन्सान बनते हैं।'

'सबार ओपरि मानस सत्य
तहार उपरि कछु नाही।'
—टैगोर

: १ :

रेखा से भी अभागा था प्रबोध। मां नहीं, बाप नहीं—एक छोटी बहिन। किन्तु इतनी छोटी नहीं कि उसे गोद में खिला सके, मुंह चूम सके या अंगुली पकड़ कर चल सके। न इतनी बड़ी थी—कि उस पर श्रद्धा या विश्वास जम सके। दरअसल वह उम्र में बढ़ गई थी—किन्तु चरित्र में, बुद्धि में बहुत छोटी थी और साथ ही विकास कुछ ऐसे ढंग से हुआ था कि वह प्रबोध को एक अंकुश समझती थी और प्रबोध उसे एक भार। दोनों के बीच की कड़ी हमेशा के लिये कभी की टूट जाती अगर जोड़ने वाली बुआ न होती।

बुआ ही अक्सर दोनों का मेल मिलाप करवाती थीं और ऐसी शृंखला थी जो दोनों का साक्षात्कार बनाये थी। प्रबोध देखता, बहन की सूरत और मनग्लानि से भर आता—'यह मेरी बहिन। छीः।'

जब वह सातवीं जमात में पढ़ती थी तो तभी दूसरी लड़की के बस्ते से चोरी करती हुई पकड़ी गई। बात उस तक आई, उसका रोम रोम कांप उठा। मुख्याध्यापिका तक जाने का साहस उसमें नहीं था। उसने उसे दूसरे स्कूल में दाखिल करा दिया। किन्तु वहां भी यही हुआ। तब तीनों का एक सम्मिलित परिवार था। बुआ उस परिवार की अधिकारिणी थी और सब काम उसी की देख रेख में होता था। बुआ ने सुना तो आग बबूला होकर पीटना शुरू किया। शाम को यह बात उसे पता लगी।

प्रबोध ने पूछा : 'सुन रश्मि, आखिर तू चाहती क्या है ?'

वह चुप।

प्रबोध ने फिर पूछा : 'बोल ना ।'

उसने साफ जवाब दिया, 'मैं पढ़ नहीं सकती ।'

'क्यों....' चीखने का कोई मतलब तो था नहीं, वह स्पष्ट कह चुकी थी। उस दिन के बाद उसने स्कूल का मुंह नहीं देखा। प्रबोध देखता और कुढ कर रह जाता। इसके सिवाय चारा भी क्या था।

एक वर्ष के बीच इस रश्मि ने तमाम मौहल्ले में लड़ने झगड़ने की अद्वितीय प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली और सच मानों में उसका नाम हो गया--चुड़ैल।

वह दिन-ब-दिन अपने काम में, रहन-सहन में अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाती रही और प्रबोध को लगता जैसे चांद का दाग बढ़ रहा है। एक दिन वह इतना बढ़ जायेगा कि आसमान पर चांद नाम की कोई चीज रहेगी ही नहीं।

उसके दिमाग में बार बार एक बात टकराती—इसका विकास इतना निकृष्ट क्यों हुआ। अक्सर वह जब जोर से चीखती, चिल्लाती तो उसके दिमाग की नसें उभरने लगती और वह ऐसा महसूस करता जैसे कोई उसके माथे पर हथोड़े बजा रहा है।

जब सब कुछ शांत होता तो वह पुकारता—'रश्मि।'

एक पत्थर का सा बुत उसके सामने आ खड़ा होता।

वह कहता—'बैठे जाओ रश्मि।'

'कहो क्या कहना है। कहो ना...।'

वह कहता, 'तुम पढ़ना दोबारा से शुरू कर दो। रश्मि, तुम्हें दुनिया में जीना है, जागना है और यह बात भी ध्यान रक्खो कि तुम बिना माँ बाप की हो।'

'तो क्या पढ़ने से मां बाप लौट आयेंगे ?'

प्रबोध अप्रतिभ होता, किन्तु फिर भी कहता, 'मां बाप नहीं लौट सकते, मगर कुछ बड़ाई तो हो सकती है, ना। कुछ समझ आ सकती है।'

वह अपनी गर्दन को कुछ उठाकर, नाक सिकोड़ कर कहती—'मैं स्कूल तो नहीं जाऊंगी।'

'ठीक है, न जाना। मुझ से तो पढ़ सकोगी ना···'

शायद वो हां कह दे। मगर पड़ौस की बुढ़िया है ना, बहुत जीर्ण शीर्ण। उसकी आवाज सुनकर जैसे उसे बिच्छू ने काट खाया, बुरी तरह से गाली बकती हुई, वह पैर पीटती और प्रबोध सोचता—क्यों उसका पतन हुआ ? क्या वह इतनी घरेलू इतनी निकृष्ट और अजीब हो गई, सब ओर फीकी नजर आती है ?

वह भद्र परिवार की नहीं है, तो वह निम्न परिवार की भी नहीं। बिलकुल मध्यवर्गीय परिवार की लड़की, जहां शरत् की बिराज ने जन्म लिया। क्या देवदास की पारो, स्नेहमयी माधवी, राम की नरायनी सब कल्पना हैं ? नहीं कल्पना नहीं हो सकती।

तो क्या रश्मि कल्पना है। उसके दिमाग में एक बात घूमी, शायद शादी के बाद जिन्दगी में कोई सुधार हो—कोई राह निकले।

बुआ तो पहले से ही तैयार थी। एक लड़का खोजा गया, बहुत साधारण, बहुत सौम्य। खोजने के बाद रश्मि को बुलाकर पूछा गया, 'देख तेरे लिए यह लड़का ठीक रहेगा ? लजाना नहीं, जीवन मरण का सवाल होता है यह।'

बुआ ने कहा—'अरे, लजायेगी किससे ? मुझसे ही ना, लो मैं जाती हूँ।'

उसके जाने के बाद भी गर्दन नीचे किये रही। प्रबोध ने दोहराया :

'बोल रश्मि'

'क्या बोलूं ?'

'यह लड़का तुझे पसन्द है ?'

'और अगर पसन्द न हुआ तो।'

'बात पक्की नहीं की है, रश्मि बदल लेंगे !'

'अच्छा।'

'हां—' किन्तु तभी बड़े जोर से धमाका हुआ और वह अपना मुंह खोलकर गालियां बकती हुई बाहर निकली। प्रबोध तब चुप रहा, रात को खाना खाते हुये बोला, 'क्यों रश्मि तूने बताया नहीं ?'

'क्या……'

'उस लड़के के बारे में।'

बहुत लापरवाही से उसनें कहा—'सब ठीक है।'

'देख पीछे मत दोष देना—हां !'

लापरवाही से वह बाहर चली गई। रश्मि की शादी हुई, पहले दिन। दूसरे दिन ही उसका पति हैजे से चल बसा। वह रोती, पटकती चीखती चिल्लाती फिर घर आ गई। किन्तु इस बार वह और भी कटु थी, और भी तेज।

आखिर तंग आकर एक दिन बुआ ने उससे कहा—'अब क्या होगा ?'

'क्या बुआ—'

'खर्चा नहीं रहा, भइया। अब कब तक ये पेंतालीस रुपल्ली में रहा जायेगा। किरायेदार भी तो वक्त पर पैसा नहीं देते।'

'दें भी कैसे बुआ। आखिर वो भी तो इन्सान हैं। और ये रश्मि…।' रश्मि बाहर ही खड़ी थी, तिलमिला कर बोली—'तो फिर गला ही क्यों नहीं घोट देते मेरा। मैं तो….'

पहली बार प्रबोध ने दृढ़ होकर कहा—'चुप रहो, रश्मि।'

'क्यों···क्या····'

'हां ! किरायेदार नहीं हूँ, जिन्हें तुम दबा लोगी, समझे।'

'तो हो क्या—'

'क्या हूँ ?'

'कुछ नहीं हो। यह जो मकान है सो मेरा है, मेरी मां ने मुझे दिया है। लोक लिहाज के मारे जाने को नहीं कहती तो शेर हुये चले जाते हो। क्या है, तुम्हारा अस्तित्व····'

'रश्मि···'

वह उसी तरह गुर्रा कर बोली, 'चीखो मत। अगर इतना ही है तो ले लो अलग मकान, चलाओ गृहस्थी।'

'ठीक है—'

प्रबोध कहता जा रहा था, 'मकान लूंगा, गृहस्थी चलाऊंगा। सड़क पर बैठूंगा और पेड़ के नीचे सोऊंगा। मगर तुम्हारी शक्ल नहीं देखूंगा·······।'

रश्मि ने तिलमिला कर कहा—'तो सुनाते क्या हो। जाओ ना' प्रबोध जो अब तक सो रहा था, सुन रहा था, एक दम जोश में आ गया। उसने उसके गाल पर चांटा मारने के लिए जैसे ही हाथ उठाया। उसने मुंह काट लिया। अगर वह तेजी से न छुटाता तो शायद खून निकल आता। बुआ ले गई उसे—और अकेला प्रबोध सोचता रहा।

वह कुछ नहीं है। एकाकी, एकान्त और अनुभव-हीन एक अचेतन प्राणी जिसे शायद इस दुनिया में जिन्दगी की बजाय पैसे के लिए, उत्कर्ष की बजाय क्षणिक प्रेम के लिए संघर्ष करना पड़े।

किन्तु उसने प्रेम के लिए नहीं, अपने लिए संघर्ष करना पड़ेगा। यह वह जान चुका था—और उसका एक उपाय था—एक शब्द में अधिक विस्तृत, अधिक विशाल क्षेत्र।

दो दिन बाद जब लखनऊ में पटरी जमती दिखाई नहीं दी—और एक नाम बड़े दर्शन छोटे, दिल्ली के प्रकाशक का खत पांडुलिपि भेजने को आ गया तो उसने बुआ को बुलाकर पूछा—'मेरे साथ दिल्ली चल सकोगी, बुआ।'

'दिल्ली, क्या कोई नौकरी मिली है ?'

'हां ऐसा सिलसिला हो सकता है, बुआ चलोगी ना दिल्ली ?'

'नहीं।'

'नहीं—' प्रबोध को आश्चर्य हुआ, किन्तु बुआ ने अपने प्रौढ़ चेहरे को विकसित करके कहा—'क्यों रे, तेरा दिमाग तो ठिकाने है। इस जवान विधवा को ढाक के तीन पात होने के लिए यहां छोड़ दूं—यही कहता है ना।'

'मगर मुझे तो जाना ही होगा, बुआ।'

'तो रोकती कब हूं पर········' कहकर बुआ उठी, 'क्यों रे वहां तेरा कोई दोस्त है।'

'नहीं'

'तो ठहरेगा कहां ?'

प्रबोध ने कुछ शांत होकर कहा—'सोच लूंगा दिल्ली पहुंच कर। कहीं न कहीं तो ठिकाना मिलेगा ही।'

'जरूर मिलेगा। पर ठहर तो—' 'कहकर वे गईं और अपनी पोटली से एक मटमैला लिफाफा निकाल कर लाईं। बोलीं—'इनमें से दिल्ली का पता तो निकाल।'

प्रबोध ने एक पता निकाल कर कहा—'बजरंग·······'

'हां, हाँ—'बुआ जैसे खिल उठी, मुंह आगे करके बोली, 'हां बजरंग। यह मुझे मिला था काशी में। मैंने इसकी बेटी, क्या नाम··· क्या नाम—'

'खैर होगा कुछ।'

'कुछ कैसे रे, उसका नाम था इन्दिरा—तो वो जो इन्दिरा थी उसे हमने बचाया था। तब से उसने मुझे मान लिया था धर्म की बहिन, कहा था दिल्ली आओ तो हमारे यहां जरूर आना।'

'मगर बुआ, क्या उसके यहां ठहरना ठीक होगा?'

'तो गलत क्या होगा रे। बहुत बड़ा जमींदारा है उसका—मकान जायदाद। वह जरूर ठहरायेगा, पता संभाल कर रख ले।'

'अच्छा.....' और तीन दिन बाद ही वह सुबह दिल्ली के विशाल रेलवे केन्द्र पर आ उतरा। उसने एक हाथ से अटैची संभाली और दूसरे में वह मटमैले रंग का परचा, जिस पर लिखा था, बजरंगसिंह...

: २ :

किन्तु बजरंगसिंह को वह दिये-जले से पहले न मिल पाया। दरअसल इस महापुरुष की जमींदारी एक जगह सीमित नहीं थी, दूर तक बिखरी पड़ी थी। किन्तु जिस जगह वह गया—वहां यही पता लगा—'हां पहले तो उसी का मकान था।'

'और अब...'

नया मालिक, उसका कारिन्दा या किरायेदार निकलकर बताता है—'आप वहाँ जाइये, वहां....'

इस 'वहां' ने उसे परेशान कर डाला। एक बार रेखा का विचार उसके मस्तिष्क में आया, किन्तु वह जैसे ही आया था, उसी तरह निकल ही गया, वह उसकी सास को देख चुका, साक्षात दुर्गा। उसके पति को देख चुका था साक्षात भद्र मां की भद्र सन्तान।

घूमता-घूमता आखिर पहुंच ही गया, और वहां पहुंच कर लगा—उसकी मेहनत वसूल हुई। घर पुराने ढंग के थे; किन्तु काफी खुले, काफी सुदृढ़। जहां असल दिलली की महत्वता का पता चलता था। मेंहदी और चमेली की मिश्रित सुगन्ध बयार के झोंकों ने आधी थकान दूर कर ली थी। अंधकार उसको नहीं कहना चाहिये किन्तु प्रकाश इतना धुंधला था कि चेहरे बहुत ही धुंधले नजर आते थे एक संयत आवाज नौजवानों का मजाक सा उड़ाती नजर आ रही थी।

उसने पूछा—'चौधरी बजरंगसिंह जी यहीं रहते हैं।'

'आइये, आइये। भीतर आइये।'

वह भीतर घुसा; एक सुदृढ़ और सीधे-सादे अधड़े व्यक्ति ने कहा, 'तशरीफ रखिये।'

'तो मैं चौधरी सहाब के दर्शन कर रहा हूं।'

'जी नहीं। मैं चौधरी सहाब नहीं हूं। मेरा नाम है स्वामी सद्-चिद् आनन्द।

'यानी सच्चिदानन्द—'

'जी हां बस। उच्चारण में तो आपकी सानी नहीं है कहां से तशरीफ लाये हैं ?'

उसने बताया—'लखनऊ से।'

'ओह—वहां तो अनार्यों ने बड़ा उपद्रव किया है। आपको याद है ना, इन मुसलमानों ने कैसे कैसे उपद्रव वहां किये हैं।'

तब ही साक्षात बजरंग वहां तशरीफ ले आये। परिचय पाकर बोले—'ओहो, तो आप हैं प्रबोध कुमार।'

'जी हां।'

और उसने बताया कि वह दिल्ली रहने ही आया है। क्या

उसके मकान की व्यवस्था हो सकेगी। मगर उन्होंने पूछा—'पढ़ चुके हो ?'

'जी हां।'

'कितना ?'

'अंग्रेजी एम० ए० का प्रथम वर्ष पास कर चुका हूँ।'

'तो इसे पूरा ही क्यों नहीं कर लेते ?'

'कर लूंगा, मगर रहना दिल्ली ही चाहता हूँ; आप तो जानते ही हैं इसी साल·······'

'शादी हो गई। वैसे त्रिवेणी तुम्हारी बड़ाई बहुत करती है, तो क्या सचमुच यहीं रहोगे ? क्या कोई नौकरी वौकरी मिली है ?'

'मिली नहीं है। पर मिल सकती है—चिट्ठी मिली थी।'

'तब ही आये हो !' अट्टाहास के साथ बजरंग ने कहा, 'तो ठहरना चाहोगे। सामान कहां है ?'

'फिलहाल तो बाहर ही है।'

बजरंग बाहर आये। अटैची को देखा—फिर अपनी लम्बी मूंछें मरोड़ीं और फिर सच्चिदानन्द को आवाज दी, 'महाराज ओ महाराज !'

फिर एक आक्रोश भरी आवाज, 'सुनते हो महाराज।'

'जी, आदेश दीजिये !' सच्चिदानन्द उठकर आया, 'कहिये ! मैं सोच रहा था जाने कौन पुकार रहा था। दरअसल ऐसा हुआ कि···'

'कहीं हरिद्वार वरद्वार तो नहीं पहुँच गए।'

'बस जी बस वहीं ! सोच रहा था लछमन भूला—गंगा का कल-कल नाद। ऊंची उठती हुई हिमशिखरें। और·······'

बजरंग ने उसे रोक कर कहा—'अच्छा, अच्छा। अब बाबू भैये को चमेली वाली हवेली की बरसाती में टिका दो।' वे प्रबोध की तरफ मुड़े, बोले, 'खाना तो नहीं खाया होगा ?'

'जी, जी हां !'

कुछ कठोरता से बजरंग ने कहा, 'मुझ से उड़ो मत। त्रिवेणी को मैं बहन मानता हूं—और तुम तो उसके भतीजे हो ना मैं जानता हूँ तुमने खाना नहीं बनाया होगा। ब्राह्मण ठहरे ना। खैर—कर्म कांड न सही, कुछ रहा ही होगा। अगर हमारे यहां खा सकते हो तो रसोई तैयार है। नहीं तो, महाराज अपने लिए खाना बनाते ही हैं। इसके साथ खा लेना।'

प्रबोध बोला, 'आप ठहरने को स्थान दे रहे हैं, यही क्या कम है, मैं इससे ज्यादा भार आप पर नहीं डालना चाहता।'

'भार कैसा मकान का तो किराया लूंगा।'

'सो तो ठीक है, मगर आपकी कृपा को भी वापिस करूंगा।

'दरअसल……'

'अच्छा, अच्छा। तुम नहीं चाहते तो रहने दो। महाराज जरा कष्ट करो तो—'

सच्चिदानन्द उठा, पांव में काठ की खटखट करने वाली खड़ाऊं डाली और एक ब्रह्मचारी की भांति गर्दन उठाकर सीना तान कर आगे चल निकला। अटैची को प्रबोध उठाये हुये था और वह प्रश्नों की झड़ी लगाये था !

जो कुछ प्रबोध ने कल्पना की थी वह नहीं हुआ। पर सफाई, यह रौनक यह सौम्यता सिर्फ सीमित क्षेत्र में ही थी। आगे वही बदबूदार नालियां, गिरे मकान—गंदगी से अटे ढेर और पोस्टलैम्प पर मंडराने वाले कीड़े। एक छोटे से घर पर जाकर सच्चिदानन्द ने आवाज दी—'श्री चुन्नीलाल जी—'

तीन आवाज के बाद दरवाजा खुला। किन्तु चुन्नीलाल के बजाय उनकी धर्मपत्नी सुमित्रा सिर्फ पेटीकोट और साधारण सी ओढ़नी कमर

पर डाले, दरवाजा खोलकर बोली—'वे हैं नहीं। काम से गये हैं।'

'प्रातः कार्य, साँय कार्य कोई ठिकाना भी तो हो काम का।

'मुझे बताकर तो गये नहीं, हां लौटेंगे जल्दी ही।'

सच्चिदानन्द ने कहा—'अरे मुल्ला दौड़ेगा तो मस्जिद तक। और चुन्नीलाल गया होगा उघाई करने। ठीक कहा ना।'

सुमित्रा बोली—'मुझ से क्या पूछते हो, ठीक ही होगा।' उसने बड़ी तेजी से दरवाजा बंद कर दिया। सच्चिदानन्द ने कहा, 'ओ भागवान, दरवाजा क्यों बन्द करती है। खोल तो।'

'कह तो दिया कि वे नहीं हैं।'

वह बोला—'मकान तो उठकर कहीं नहीं गया। इन्हें भेजा है चौधरी साहब ने। ऊपर की बरसाती में रहेंगे।' और फिर प्रबोध को 'आइये बन्धू' संबोधित करके अंधकारमय जीने में चढ़ने लगे। सबसे पहले सुमित्रा चढ़ी। बीच की मंजिल के एक कमरे में जाकर समा गई। वे दोनों ऊपर चढ़ते रहे। लगभग पांच मिनट की घमा चौकड़ी के बाद टूटी चूड़ी के सदृश चाँद के दर्शन हुए। आवाज के साथ दरवाजा खोलते हुए सच्चिदानन्द ने कहा—'यह है आपका प्रासाद!'

'प्रासाद!'

'अरे प्रासाद नहीं समझते, महल। और इस महल के मालिक हैं आप। सेवक सबसे नीचे रहता है। बीच में श्री चुन्नीलाल का ढाई फुटा परिवार रहता है समझे श्रीमान!'

'यह ढाई फुटा क्या होता है?'

'अरे एक फुट वो, एक फुट श्रीमती और आधा फुट राजीव! उनका लड़का तो अभी आधा ही है ना—' सच्चिदानन्द कहता जा रहा था और प्रबोध सोच रहा था, गंदगी नीचे है ऊपर नहीं। यह चूड़ी की तरह टूटा चांद, स्वच्छ आकाश—और उससे प्रतिद्वन्दता करने वाला यह

चमेली का बड़ा सा झाड़। उसके सफेद फूल आसमान के नीचे तारों की तरह दमादम रहे थे। अचानक उसे ध्यान आया, 'और रोशनी!'

सच्चिदानन्द ने स्विच दबाकर कहा, 'यह देखिये, प्रकाश भी है श्रीमन्! और अगर चारपाई की जरूरत हो तो—' उसने इशारे दीवार से सटा तख्त दिखाया। बोला : 'यहा आप सच्चे ब्रह्मचारी की तरह जीवन बिता सकेंगे—हैं ना।'

'और कोई ब्रह्मचारी हो ही ना तो—'

'तो कैसी बन्धु गृहस्थ में भी आदमी ब्रह्मचारी रह सकता है, समझा!'

'प्रयास करूंगा!'

'जरूर कीजिये, और बन्धु, तो मैं चलूं। किसी चीज की आवश्यकता है क्या?'

'हाँ, अगर एक लोटा मिल जाता तो—'

'जरूर मिलेगा!' सच्चिदानन्द लोटा लेकर उपस्थित हुआ। बहुत ही अजीब, कमन्डल की तरह। उसके इतिहास के बारे में उसने एक बड़ी ही लोमहर्षिणी कथा सुनाई। वह एक जन्मजात ब्रह्मचारी था बहुत ही बचपन से उसे तंत्र-विद्या से प्रेम हो गया था और इस तंत्र विद्या ने उसका न केवल पढ़ना छुड़ा दिया, अपितु उसके शब्दों में एक सुन्दर पत्नी से मुख मुड़वा दिया। उसने बताया कि उसके पैदा होते ही ज्योतिषियों ने उसके जीवन में शक पैदा कर दिया था। उन्होंने बताया था कि यह बालक बहुत बड़ा साधु, तत्वशास्त्री बनेगा।

यही उसकी जिन्दगी में उथल पुथल मचाने वाला सिद्ध हुआ। वह सब कुछ छोड़, सब कुछ त्याग कर एक रात गौतम बुद्ध की तरह घर से निकल पड़ा।

उसने बताया, वह रात उसकी जिन्दगी की एक महत्वपूर्ण रात थी।

'क्यों ?'

प्रबोध के प्रश्न को पीकर उसने कहा—'पूछो, क्यों नहीं। अगर उस दिन घर से न निकलता तो शायद यह सब न होता जो हो गया। देवी के दर्शन तक न कर पाता।'

'तो तुमने देवी के दर्शन किये ?'

'श्रां हां आं—'

इस स्वर में कुछ अजीब सी अपने प्रति अविश्वास की भर्तस्ना थी। उसने तिलमिला कर कहा, 'यह लोटा देख रहे हो ना।'

'हां, हां।'

'यही लोटा देवी की अतुलनीय भेंट है। जानते हो मैं जा रहा था गंगोत्री। रास्ते में थी चट्टियां, ऊबड़ खाबड़ रास्ते और जिन्दगी की तरह असम पगडंडियां। बहुत ही ठन्डी रातें और बरफीली हवायें। मुझे हो गया बुखार—बहुत तेज बुखार। चलना तक भी दूभर हो गया।'

प्रबोध ने पूछा—'तो क्या बुखार में चलते रहे ?'

'निश्चित रूप से। शायद तुम नहीं जानते मैं वहां बेहोश होकर गिर पड़ा था। बहुत बर्फीली हवा थी—कोई सहारा नहीं। जेब खाली। भीख मांगना मेरी वृति नहीं थी। थी क्या अब भी नहीं है। सोचा मरना ही क़िस्मत में लिखा हैं तो कौन रोक सकता है। पर जानते हो मारने वाले से बचाने वाला बहुत बड़ा होता है।'

'सो तो है ही।'

'और हुआ भी यही। मुझे सपने में लगा जैसे देवी मुझे पुकार रही है: 'उठ खड़ा हो, यही तो ब्राह्म बेला है। उठ—'

'और तुम उठ गये।'

'हां—और उठा तो तीसरा पहर ही था। रोम रोम एक अद्‌भुत शक्ति से दीप्त हो रहा था। नस नस में एक नई जिन्दगी थी और मैंने देखा यह लोटा, देवी का प्रसाद मेरे सामने पड़ा है।'

'सुन्दर—'

वह बोला : 'सुन्दर नहीं बन्धु, बहुत सुन्दर। खैर अब तो मैं चलता हूँ, सुबह दर्शन होंगे।'

'निश्चित रूप से।'

उसके जाने के बाद प्रबोध उठा। कुछ टहला और फिर तख्त पर जाकर पड़ गया। उसके सामने था विचित्र लोटा और धूल से अटी बरसाती। चुपचाप लेट गया। फिर उठा, आकर देखा तारिका मंडित आकाश में उसका यह नया घर, नया शहर और पुराना तख्त पुराना, लोटा अस्तित्व हीन सा दीख रहा था। नीचे कुछ घुसर फुसर थी, कुछ शोर। उसने सोचा—यह तो झगड़ा है, फिर दिमाग में आया कैसा झगड़ा। पति पत्नी का भी कोई झगड़ा होता है।

गई रात तक वह जागता रहा और फिर सो गया। ऐसा एक चित्त, ऐसा शांत कि सवेरे जब सूरज ने उसके मुंह पर मालिश करनी शुरू की तो वह उठा। अटैची खोली मजन मला और नहाने का उपक्रम करने लगा। किन्तु नहाने के लिए पानी ?

पानी की बात सोच ही रहा था कि एक अच्छे खासे तरुण और अधेड़ आयु के बीच आदमी ने जो उम्र से नहीं चेहरे से अजीब लगता था, बहुत ही मिठास के साथ कहा—'तो आप हैं प्रबोध बाबू।'

'जी, मेरा ही नाम प्रबोध है।'

'और, मेरा चुन्नीलाल।'

'ओह' उसने तपाक से हाथ मिलाया, फिर बोला—'यहां नहाने का इन्तजाम हो पायेगा।'

'जरूर—आइये', वह उसे एक टीन के लकड़ी के बने कटघर पर ले गया और फिर पुकार कर बोला—'जरा, सम्हल कर। देखिये कहीं काई से रपट नहीं जाइयेगा।'

प्रबोध नहाया, जितना अजीब गुसलखाना था, उससे भी अजीब था वहां का वातावरण। पति और पत्नि इसी तरह रहते हैं क्या। वह एक दम सिहर उठा—तो शादी इसी को कहते हैं, पारिवारिक जीवन यही है।

अभी जो चुन्नीलाल इतनी मीठी मीठी बातें कर रहा था, वह इतना अजीब, इतना असभ्य और मूर्खता पूर्ण वार्तालाप कर रहा था कि उसे उबकाई आने लगी। वह ज्यादा देर नहीं टिक पाया—बहुत जल्दी नल के नीचे सिर लगाकर साबुन के झागों सहित इस तरह ऊपर भागा, जैसे कोई उसे पकड़ रहा हो। और ऊपर पहुंचा तो देखा सच्चिदानन्द सूरज की ओर मुंह करके चुपचाप कुछ मंत्र जप रहा है। युगल दम्पति के शोर की आवाज अब तक आ रही थी। वह गया और तख्त पर पड़ रहा। कुछ देर बाद सच्चिदानन्द ने आकर आवाज दी 'प्रबोध हो क्या! अरे बन्धु बाहर तो आओ, भीतर क्या कर रहे हो?'

वह बाहर आकर बोला, 'धूप में खड़ा करोगे क्या?'

सच्चिदानन्द ने उत्तर दिया, 'जिन्दगी ही धूप छांव है। प्रिय भाई! अगर धूप से बचोगे तो छांव का अनुभव कैसे करोगे। कैसे पहचानोगे, कि यही जिन्दगी है···खैर बन्धु कैसी कटी है।'

'आपकी कृपा रही सच्चिदानन्द जी—' प्रबोध ने हाथ जोड़े।

'न न--सो मेरी नहीं। इसके लिए तो सिर्फ ईश्वर का धन्यवाद ही पर्याप्त है। और बताओ क्या कर्म है?'

'कोई खास नहीं, एक इन्टरव्यू में जाना है।'

'क्या कहते हो--इन्टरव्यू यानी भेंट है। और कोई महत्व नहीं। ना, ना भाई, अब मैं नहीं छेड़ूंगा, मैं चला।' और बिना उत्तर लिये धमाधम नीचे उतर गया। प्रबोध अवाक हो इस आश्चर्यपूर्ण व्यक्ति को देखता रहा जो गिरगिट की तरह रंग बदल रहा था।

जीने में दोबारा चढ़ने की आवाज आई। समझा कि सच्चिदानन्द लौटा होगा, किन्तु यह सच्चिदानन्द नहीं एक औरत थी। बहुत ही मामूली, बहुत ही साधारण। आते ही बोली, 'मुझे बजरंग चौधरी ने भेजा है।'

'हुक्म करो।'

आगुन्तिका हंसी। प्रबोध की दृष्टि औरत पर पड़ी जिसके बाल अस्तव्यस्त थे। बहुत ही सस्ते किस्म के रेशम की साड़ी नहीं, धोती बधे, पान से ओठ रंगे वह औरत अब भी मुस्करा रही थी, धीरे से बोली—'मैं रत्ती हूँ बाबूजी।'

'रत्ती—'

'हाँ रत्ती ही हूँ। हम जात के कहार हैं बाबूजी। आप लोगों की मेहरबानी से जीते हैं। जो देते हैं खा लेते हैं, जो पहना देते हैं पहन लेते हैं। गरीब हैं बाबू जी। चौधरी की प्रजा हैं।'

'तो फिर।'

'बाबूजी--झाड़ू तो देनी ही होगी। सफाई बगैरा कर जाया करूंगी बर्तन मांज दूंगी और कहो तो—'

'तो।'

'तो कुछ नहीं बाबूजी। जरा दो मिनट बाहर आ जाइये मैं सब ठीक किये देती हूं।'

'अच्छा' : प्रबोध हट गया।

: ३ :

चमेली के पेड़ से सटकर ही एक और पेड़ था मेंहदी का। इस पेड़ की छाया चमेली के पेड़ से टकराती थी किन्तु उसकी जड़ें उसी मिट्टी से अपना भोजन प्राप्त करती थीं जिससे पीपल का पुनीत वृक्ष प्राप्त करने में असफल रहकर अन्तिम सांसें ले रहा था, बावजूद इसके कि उसके सामने राधा कृष्ण की मूर्ति थी लोगों की श्रद्धा थी और चावल मिले पानी में पैसे दो पैसे का मिश्रित दूध। इन दोनों के बीच था मंदिर का जगमगाता कलश।

प्रबोध अक्सर इस कलश को देखता और रह रहकर लखनऊ के जीवन के प्रति स्मृति पाकर व्यथित हो उठता था। कितना सुन्दर था उसका शहर और कितना सौम्य था वहां उसका जीवन। ठीक था रश्मि से वह संतुष्ट नहीं था। किन्तु किरण तो थी—एक दंभी, स्वाभिमानी लड़की होने के बावजूद उसमें कुछ ऐसे गुण भी थे कि वह अक्सर उसके सपनों में आकर कौंध जाती थी। मगर यहां न किरण थी न रश्मि, न कुमुदनाथ का आशीर्वाद का भरा हाथ था और, न बुआ की ममता।

यहां थी दिल्ली—एक बड़ा शहर, बड़ी राजधानी और महानगरी के तरह तरह के चेहरे। एक चुन्नीलाल था, जो पैसे के लिये जीता था और पैसे के लिए मरता था। एक एक पैसे को दांत से पकड़ता था। लोगों की मजबूरी से सूद उठाता—एक आना, दो आना और

कभी कभी तो चार आना रुपया। वह समझता था कि उसके सब दुर्गुण, सब कमजोरियां पैसा छिपा लेगा और एक दिन इस टूटी फूटी दिवालों के बदले संगमरमर के फर्श होंगे। सोफासेट, कार, दूर तक फैले उद्यान, और लम्बा चौड़ा कारोबार। और यह सब वह करना चाहता था जिसे गिनकर एक सौ तीन रुपये मिलते थे और उन रुपयों को सुमित्रा पर खर्च न करके, राजीव पर खर्च न करके सूद पर उठाता था और सपने देखता था एक दिन बहुत बड़ा आदमी होगा। सूद खाकर, लाट्री लगाकर, सत्यनारायण कथा कहलवाकर वह बहुत बड़ा आदमी बनना चाहता था।

दूसरा था सच्चिदानन्द, इसी तरह का महत्वाकांक्षी ब्रह्मचारी। किन्तु शायद उसे ब्रह्मचारी कहना अनुचित था। वह वक्त आड़े का ब्रह्मचारी था और हमेशा एक ऐसे तंत्र निर्माण की खोज में रहता था जो उसकी तमाम इच्छा पूरी करदे। शायद बंगाल में भी ऐसा सम्मोहन तंत्र न होता हो। उसके कथनानुसार वह एक ऐसा तंत्र तैयार करना चाहता था जो उसकी आंखों में समा जाय और फिर आंखें किसी ऐसी धनी इकलौती कन्या पर अपना जादू चलायें जो सब कुछ हार कर उसे समर्पित कर दे।

प्रबोध ने सुना—एक मुस्कान उसके चारों तरफ नाची और एक पौराणिक कथा याद आई जब नारद एक काल्पनिक कन्या की हस्त रेखाओं से उसके सौंदर्य से प्रभावित हो उठे थे और स्वयंवर में उसे प्राप्त करने के लिए भगवान विष्णु के पास पहुँचे थे।

उसने पढ़ा था राम का जन्म, सीता का हरण इसी कारण से हुआ था क्योंकि नारद ने उन्हें 'हरि' का रूप देने पर आशीर्वाद नहीं शाप दिया था और शाप से अभिश्प्त से राम किष्किन्धा के आसपास रात-भर, मृगों, वृक्षों से पूछते फिरे थे कि, 'तुमने देखा है, सीते को।' विदेह कन्या को जनक सुता को। जनक सुता को प्राण वल्लभ को।

दरअसल बात यह थी कि नारद की महत्वाकांक्षा सुनकर क्षीर सागर में वास करने वाले हरि मुस्करा उठे और उनकी ईर्ष्या पूर्ण आंखों ने देखा—हजरत, उन्हीं की पत्नी पर हाथ साफ करने जा रहे हैं युग सत् का और बात कलि की।

पर थे तो वचन बद्ध। उन्होंने उसे अपना नहीं हरि का रूप दिया। हरि अर्थात बन्दर, और स्वयं जाकर लक्ष्मी, सरस्वती के संगम को वर लिया।

यह कथा सच्चिदानन्द भी जानता था। मगर उसमें असफलता के अवसर पर इतना बड़ा सच्चा शाप देने की क्षमता न थी। दिन भर मोटी मोटी किताबें पढ़ना, उपदेश झाड़ना ही उसका काम था।

प्रबोध दिल्ली आया था। दिल्ली को एक विस्तृत क्षेत्र समझ कर। शायद कहीं भी कोई काम हो जाय, किन्तु यहां आकर उसे लगा जैसे दिल्ली हो'सवा गज की हाट मील भर की लाट। रेडियो पर गुट, समाचार पत्रों में गुट, और एम्पलायमैंट एक्सचेन्ज में गुट। वह तो आसानी थी कि आते आते बी. ए. और एम. ए. की डिग्री, सनद ले आया था। तीन चार दिन के लगातार सतत् प्रयत्नों के बाद उसने अपने आपको एक छोटे से, किन्तु विशाल बोर्ड वाले विद्यालय में पाया। वह तो सरकार के मुकद्दमा चलाने का डर था, नहीं तो शायद उसे विश्व-विद्यालय का नाम दे देते।

एक बहुत ही साधारण भवन था। साधारण फर्नीचर और उसकी नजरों में बहुत ही सस्ते रेट वाला मैंनेजर। आँखों पर मोटा चश्मा, बालों में खिजाब और सामने पंजाब विश्व-विद्यालय का पाठ्य-क्रम। यह भी एक कृपा ही थी पंजाब विश्व-विद्यालय की जो इन शिक्षा की दुकानों में इतने लोग आधे पेट रोजी खा रहे थे।

मैंनेजर ने पूछा, 'तो आप एम. ए. हैं।'

'जी हां'

'मगर इससे तो कुछ नहीं बनता। कोई और डिग्री नहीं है, यहां बी. ए. के साथ आपको हिन्दी परीक्षा भी पढ़ानी पड़े तो—

'सो भी हो जायेगा, मैंने साहित्य रत्न किया है।'

'उसका सार्टिफिकेट.....'

'वह इस वक्त नहीं है। मंगवा देंगे।'

'और पढ़ाने का अभ्यास!'

प्रबोध ने कहा—'ये सर्टिफिकेट ही हैं। अगर न पढ़ाता तो ये सर्टिफिकेट कैसे लाता।'

'बात करने में बहुत चालाक हो।'

'यह भी सब अनुभव की कृपा है, नहीं तो हम क्या हैं। इस हम से दंभ न जान लेना—लखनऊ में हम का ही प्रयोग होता है।'

'ठीक है।' मैनेजर ने कहा—'अब काम की बात करो, लोगे क्या?'

'जो मुनासिब समझें।'

'फिर भी। तीन चार घंटे का वक्त आपको लगाना होगा। बताइये चालीस ठीक रहेंगे।'

'चालीस—चालीस रुपये ना।'

'हां हां आने पैसों में तो बात नहीं कर रहा।'

'फिर भी—'

'आप काम कीजिये और बढ़ा दूंगा।'

'मगर जनाब', प्रबोध बोला : 'चालीस बहुत कम हैं।'

मैनेजर कुछ झुंझला पड़ा, 'ठीक है, आप कहीं और देख लीजिये, हम इससे ज्यादा नहीं दे सकते।'

'सो तो करना ही होगा, नमस्कार।' कहकर उसने अपनी सनदें

समेटी और चलने को प्रस्तुत हुआ । दलीज पार ही की थी कि मैंनेजर ने पुकारा--'ए—पचास लेने हैं ।'

'हम सौदा तो आप से नहीं कर रहे । आपके यहां काम करेंगे, जी जान लगायेंगे तो कम से कम पेट तो भरे ।'

'ठीक है, देखिये । साठ से ज्यादा नहीं दे पाऊंगा । अब आप चाहें तो जा सकते हैं । साठ के सत्तर भले ही मिल जायें, लेकिन हमारे जैसे आदमी नहीं मिलेंगे । मेरी बात मानिये, काम शुरु कीजिये ।'

'जी'

उन्होंने प्रफुल्लता से घंटी बजाई और एक लड़की आई, जिसे मिस कहना भी अनुचित था और अध्यापिका कहना भी अनुचित ! क्योंकि मिस का अर्थ है कौमार्यसुता—सुहागवती होने से पूर्व लिपिस्टिक, सिंदूर, मांग पट्टी होना लगभग हर जगह निषेध्य है और शायद अध्यापिका को भी यह वांछनीय नहीं है ।

लड़की सुन्दर नहीं थी । जिस नस्ल का वह प्रतिनिधित्व करती थी वह शायद गलत सम्मिश्रण की वर्ण शंकरता का परिणाम थी । मैंनेजर के आदेशानुसार वह उसे कई कक्षाओं में ले गई और चार-पांच घटे तक ट्रायल लेती रही ।

उसके बाद जब वह घर आया तो उसके दिमाग में एक सवाल था, एक समस्या थी कि सिर्फ अपने मुनाफे के बजट तैयार करने वाली पंजाब यूनिवर्सिटी किस कदर नई पौध के विकास को उलट पुलट रही है । जहां उसे काम करना होगा कोई विद्यालय नहीं, गुरुकुल नहीं, मदरसा नहीं एक दुकान है जहां सर्टिफिकेट प्राप्त करने के लिए पैसे एक लेकर शिक्षा दी जाती है । विद्यार्थी टैक्स्ट की बजाय नोट्स खरीदने लगीं । और वहां सत्य के प्रति जिज्ञासा, स्कूल के प्रति संयमता भी प्रायः होती जा रही थी । अध्यापक के प्रति श्रद्धा नहीं—उसे लगा जैसे जेब में

पर श्रद्धा होती जा रही है—और क्योंकि वे पैसा व्यय करते थे, फीस जुटाते थे इसलिए उनके चेहरे पर ऐसा ही मान था—जैसे सम्मानित नौकर के प्रति लोग रखते हैं।

लड़के थे—बहुत ही चमक-दमक के हामी, फैशन में तेज और अपरिपक्व अवस्था में भी काम कुंठाओं के शिकार। एक दिन में उसने जितना जाना वह कम नहीं था। लड़के दरअसल हर महीने स्कूल बदल लेते थे और वे एक स्कूल से दूसरे स्कूल में भंवरों की तरह से उस स्कूल में पढ़ने वाली कलियों का रस चूसने को न सही, मंडराने को घूमते रहते थे और उनमें दो चर्चा होतीं थीं।

एक उस स्कूल में इतनी फीस कम है, इतनी कमीशन है और इतनी लड़कियां। बहुत ही अकर्मण्य निढाल वे लड़के इन स्कूलों में प्रवेश लेते थे जिन्हें स्वीकृत और अधिकृत स्कूल निकाल देते थे या बार-बार एक ही कक्षा के एक ही डैस्क पर अपना स्थान सुरक्षित रखते थे। और मार आदि से परेशान हो उठते थे। इनमें ऐसे भी लड़के थे जो सिनेमा देखते, चोरी करते पकड़े गये थे और यहां आ गये।

दूसरी ओर लड़कियों का भी यही हाल था। उसी तरह तिल-मिलाती भावनाओं को अपने हृदय में संजोये, सिर्फ अपने होने वाले पति की सेवा में कुछ प्रमाणपत्र उपस्थित करने की इच्छा से नोटस् का भार उठातीं, अक्सर खट्टी मीठी गोलियां, आम पापड़ जैसी पौष्टिक चीजों को खाती और अनुशासन हीन क्षेत्रों में विकास पाकर जैसी दशा छाया में पड़े पौदों की होती है, उसी तरह वे बुझी-बुझी, भनापूर्ण मजाकों में पलने वाली जिन्दगी में सिहर रही थी और सब हम इस ताप उसे ढोये जा रही थीं।

'फिर भी यह एक बहुत बड़ी बात थी। उसे काम मिल गया,

कम से कम भूखा तो नहीं मरेगा—और क्या चाहिए ?

: ४ :

एक माह बाद। बुआ ने किसी से खत लिखाकर भेजा था—
चिरंजीव प्रबोध,

तुम्हें देखे तो जमाना हो गया—प्रबोध। क्या दिल्ली में ही रम गये—भैया तीस रुपये भेजने से तो मां बाप की आत्मा ठन्डी होती नहीं हैं। कोई खत लिखो, कभी आ जाया करो। कैसे हो, क्या कर रहे हो। मुझे कुछ भी तो नहीं मालूम। कौन जाने तुम कैसे होगे ? क्या खाते होगे क्या पीते होंगे ? कैसे रहते होंगे। मैं तो अब बूढ़ी हो चली हूँ ? मेरा भरोसा ही क्या है। खत लिखोगे किसी से सुन लूंगी। नहीं तो बैठी हूं चुपचाप।

एक बात है भैया। दिल जाने तो मान लेना ! तुम पहुँच गये हो दिल्ली। बड़ा शहर है ना ! वहां टिक भी गये हो। भैया, जल्दी से नौकरी लगालो। चाहती हूं इसे देखकर जो आग उमड़ती है—वह बहू देखकर ठीक हो जाय। उसे लेकर चाहे दिल्ली रहो, या लखनऊ। देख लेती बस ! घर में एक है × × × × × (कुछ काट पीट के बाद लिखा था) भैया रश्मि भी तुम्हारे साथ रहे तो कैसा हो।

खत लिखना जरूर भूलना नहीं।

'तुम्हारी बुआ—'

प्रबोध लिखाई पहचानता था। इस तरह बिना लकीर के लि[illegible] की आदत सिर्फ किरण को ही है। और यह जो काट-पी[illegible] उसमें जहां एक ओर बुआ का निश्चल मान अंकित है, वहां [illegible] विवेक भी। सोचने लगा क्या ऐसा नहीं हो सकता था, कि कु[illegible]

एक
लगीं।

किरण, हां किरण ही एक छोटा सा खत उसे, लिख दे। सिर्फ एक छोटा सा खत···!

बहुत ही मस्त धूप खिली थी। कहीं से फिल्मी गाने की आवाज आ रही थी—कितने सिजदे किये हमने, वो पत्थर के सनम निकले।

सनम का क्या मतलब होता है, उसने मन ही मन अन्दाजा लगाया और लगाता रहा। एक मीठा सा स्वप्न, एक छोटी सी लहर दिल के किसी कोने में उठी और चमेली की खुशबू के साथ, मेंहदी की हवा के साथ सारे वातावरण में फैल गई। उसने कागज फाड़ कर बुआ को लिखा—

आदरणीय बूआ जी—

अभी अभी आपका खत पढ़ा। क्यों बुआ क्या मैं लखनऊ, तुम्हें और रश्मि को भुला सकता हूँ? लोग कहते हैं यह दिल्ली बादशाहों का नगर है—पर मुझे तो कोई खास बात नजर आती नहीं। बुआ, लखनऊ आऊंगा, जरूर। मगर कब यह तो भगवान भी नहीं बता सकते। कोई खास बात बुआ, इसमें नहीं लिख रहा हूँ। फिर भी क्या रश्मि को मेरी याद नहीं आती? पता तो उसे भी मालूम है। वह भी खत लिख सकती थी। शायद अब लिखे!

तुम्हारा,

प्रबोध।

पुनश्च: साथ का खत किरण तक पहुँचा दोगी ना।

उसने किरण को लिखना शुरू किया,

हम इस

'हां

जी अभी मैंने एक गाना सुना था—कितने सिजदे किये हमने, के सनम निकले। क्या यह बात सच है, किरण। हो सकता

है झूठ हो । तुम्हें एक बात बताऊं, कालरिज का वह बूढ़ा नाविक भी इसी तरह सोचता था कि यह सत्य है, यह स्वप्न है। यह झूठ होना चाहिए । इसे सच होना चाहिये ।

मैं यहां दिल्ली में आकर किरण, कुछ अजीब-अजीब सा, बोझिल सा महसूस करता हूं । इसलिए कि न कोई मिलने वाला है न जुलने वाला । अजीब-अजीब लोग टकराते हैं ।

इतना लिखने के बाद उसने वह कागज फाड़ दिया । दोबारा से लिखा ।

किरण,

यह खत दिल्ली से लिख रहा हूँ । कितना फासला है दिल्ली और लखनऊ में । मगर इससे ज्यादा···तब ही यकायक पैन उसके हाथ से गिर पड़ा । वह उसे उठाने को खड़ा हुआ तो सामने लगे आइने में उसकी नजर गई ।

उसके सामने एक अजीब सी शक्ल आकर खड़ी हो गई । एक ऐसी शक्ल जिसमें खून नहीं, हाड नहीं—मांस नहीं । जैसे जली रस्सी की राख हो ।

'कौन हो सकता है ?' दिमाग ने जोर डाला ।

उत्तर मिला, 'एक दंभी पुरुष, एक कायर भाई और ह्रासोन्मुख प्रेमी ।

'कितना दंभ था, कितना अहं था । कि वह नहीं झुकेगा, वह नहीं नवेगा । किन्तु अब·······'

उसने अपना चित्र देखा और किरण का खत—दिमाग में एक अजीब सी उथल-पुथल मची । दिमाग की शिरायें टूटने सी लगीं । उसने खत को उठाया और टुकड़े-टुकड़े कर दिये ।

सिर्फ बुआ वाला खत लेकर उसने पोस्ट करने की इच्छा से जेब में

डाला और चल पड़ा। बीच की मंजिल में सुमित्रा बाल सुखा रही थी उसे आता देख वह झटपट भीतर चली गई। नीचे सच्चिदानन्द कहीं जाने को प्रस्तुत था, बोला—'कहो बन्धुवर !'

'फरमाइये।'

'भोजन हो गया ?'

'हो गया। किन्तु आज आप इस वक्त यहां कैसे। क्या तांत्रिक शक्ति से विश्वास हट गया है ?'

'नहीं—विश्वास बढ़ गया है। दरअसल आप अभी जान ही नहीं पाये कि तन्त्र शक्ति क्या होती है। मस्तिष्क की एकाग्रता तो समझते हैं ना।'

'हां—मन की एकाग्रता का मतलब कल्पना साकारता से लिया जा सकता है।'

'बस-बस—' वह बोला—'यही एकाग्रता पहले मन के विचारों में आती है। उससे सूत्र का निर्माण होता है और सूत्र से फिर मन्त्र.......'

'मन्त्रों की एकाग्रता की चरम सीमा क्या होती है ?'

'वही तो तन्त्र है। और मैंने सोचा है कि मैं इसका वाम-मार्ग ही अपनाकर काबू कर सकता हूं।'

'वाम-मार्ग क्या होता है ?'

सच्चिदानन्द हंसा, 'तो क्या सारी बातें आज ही पूछ डालोगे। कुछ कल के लिए भी तो छोड़ो।'

'लीजिये, छोड़ दिया।'

वह चलने लगा तो सच्चिदानन्द ने पुकारा, 'जरा सुनिये तो। 'ऊंचा नीचा' खाने की तो इच्छा नहीं है।'

'ऊंचा नीचा क्या होता है, कोई मिठाई का नाम है क्या ?'

'नहीं—तुम्हारी अक्ल का दिवालीया पन·······'

'क्या मतलब ?'

उसका अभिप्राय था, मांस से। प्रबोध ने धमकाते हुए कहा—'दिमाग ठिकाने है क्या, चौधरी साहब ने सुन लिया तो !'

'फांसी चढ़ा देंगे।'

'क्या बुरा भला भी नहीं कहेंगे ?'

लड़ने के ढंग में प्रस्तुत सच्चिदानन्द बोला—'कहें तो कहें—आओ अरे खड़े क्यों रह गये। आओ—' प्रबोध भीतर नहीं घुसा, उसने बाहर से देखा गंदगी से भरे घर में सिन्दूर से भैरव का त्रिकाल खिंचा था और घी की जोत जल रही थी। नजर दौड़ा कर देखा कहीं खोपड़ी वोपड़ी तो नहीं पड़ी। उसके बाद वह उससे बिदा लेकर चला गया।

शाम को जब वह खाना खाकर लौट रहा था तो रास्ते में टकराये बजरंग। बड़े विनीत स्वर में किंतु कठोर आवाज से बोले—'कहो, क्या हाल है ?'

'जी कृपा है।'

वह सकपकाया, एक महीना होने को आया अब तो किराया देना ही चाहिये। पूछा—'आपने किराया नहीं बताया था।'

'ओह ! किराया दोगे ?'

'प्रयत्न तो करूंगा ही। मुझे अन्दाजा हो जाता।'

'अन्दाजा चाहिए, चलो मैं आता हूँ। बतादूंगा—' कहकर एक बड़ी ही अजीब मुद्रा से वह लौट गया। फिर तेजी से वाहर निकल कर आया, बोला—'खाना तो नहीं खाया होगा ?'

'जी खा चुका !'

'इतनी जल्दी—आओ भीतर, आओ कुछ बातचीत ही करेंगे।'

घर के अग्रभाग में सायबान था और उसके बाद सामंती बैठक। बजरंग ने जाते ही पुकारा, 'चुन्नू।'

चुन्नू था एक कुत्ता, बहुत प्यारा, आकर पूंछ हिलाने लगा। थोड़ी देर में एक नौकर आया, खाना रख गया।

'आप खाना खाइये—'

'जी, धन्यवाद।'

'थोड़ा सा—' उनकी मूंछें हिलीं और फिर किसी भय से बैठ गयी।

नौकर ने कहा, 'मालिक, खाना खाइये।'

'अच्छा' वे प्रबोध की तरफ मुड़े, पूछा, 'काम मिल गया या नहीं।'

'जी हां।'

'तनखा कितनी है ?'

प्रबोध सोच में पड़ गया। एम० ए० पास या पढ़े लिखे बेकारों के साथ यह भी तो एक मुसीबत होती है। कुछ सोचकर बोला—'जी एक सौ पांच।'

'और घर कितना भेजोगे ?'

'जो बचेगा।'

'क्या मतलब, अगर एक रुपया ही बचा तो। मुझे बताओ घर कितना भेजोगे ?'

'जी।'

बड़ी शालीनता से वे बोले—'शरमाओ मत, त्रिवेणी मेरी बहन जैसी ही है कितना भेजोगे ?'

'जी, साठ !'

'और रहे पैंतालीस।' कुछ देर तक वे खाना खाते रहे। भीतर से

कराह की कुछ ऐसी आवाज आ रही थी कि वह अपने आपको जब्त न कर पाया, कुछ देर बाद पूछ ही बैठा, 'क्या कोई बीमार है क्या ?'

'नहीं, कोई ऐसी बात तो नहीं !' फिर अपने ही आप बोले—'तुमने इन्दू को तो नहीं देखा है ना अब तक।'

'इन्दू—' कुछ हिसाब लगाकर उसने पूछा, 'कहीं उनका नाम इंदिरा तो नहीं रहा।'

'हां हां—पिछले साल उसने बी० ए० पास किया था,' कहकर उन्होंने सगर्व सिर उठाया और फिर कुछ देर चुप रहकर बोले, 'वह कुछ अजीब-जजीब सी रहती है। मैं सोचता हूं कि तुम्हारी बरसाती के दो भाग कर दूं।'

'जैसा आप चाहें, मैं क्या कहूँ।'

'ठीक है। दरअसल इन्दू को शोर से डर लगता है। कुछ मन ऐसा रहता है कि···शोर क्या बात-चीत सुनते ही घबरा जाती है। तुम्हें गाने वाने का शौक तो नहीं।'

'जी, नहीं !'

'और रेडियो, हारमोनियम भी साथ नहीं होगा।'

'बिल्कुल नहीं जी !'

'तो ठीक है। मैं पार्टीशन कराये देता हूँ। इन्दू वहीं रहेगी और सुनो तुमको किराया देना होगा पन्द्रह रुपये !'

'और इस माह—'

उन्हें कुछ क्रोध सा आ गया, तिलमिला कर बोले, 'और क्या इस माह पचास दोगे। चुन्नू, जा रोटी के लिए आवाज लगा कर आ।'

चुन्नू ने अपनी दुम उठाई। आंखों ही आंखों में प्रबोध को ताका

और आवाज लगाई। रोटी आ गई। बड़ी कठिनाई से वह उठा, हाथ जोड़कर बोला—'अच्छा तो मैं चलूं!'

'अच्छा!'

: ५ :

अशान्ति की एक लहर चुन्नीलाल के परिवार में उठी और इसका कारण था प्रबोध। उस दिन बाल सुखाती हुई सुमित्रा निकली थी, शाम को ही चुन्नीलाल ने आकर कहा, 'नमस्ते; प्रबोध बाबू।'

'नमस्ते, तशरीफ रखेंगे!'

'नहीं, नहीं चलूंगा वैसे तो एक बात आपसे कहनी थी।'

'कहिये!'

चुन्नीलाल बोला, 'देखिये, आप मेरी आदत तो जान चुके ही हैं। मैं लाग लपेट पसन्द नहीं करता।'

'हां हां—

'और आप औरतों का स्वभाव भी जानते हैं। जान लीजिये मैं अपनी तरफ से कुछ नहीं कहूंगा।'

हां हाँ! मगर कहिये तो—'

चुन्नीलाल ने औरतों की तरह फुसफुसा कर कहा—'देखिये, प्रबोध बाबू, औरत होती हैं झक्की। जो कह दें वह कम है। और जो कर दें सो ठीक है। बात दरअसल यह है कि सुमित्रा पुराने ख्यालों की औरत है। किस लंगूरनी के पल्ले बंध गया हूँ। वह गैर मर्दों से मिलना जुलना पसन्द नहीं करती। आप जरा उतरें तो खांस दीजियेगा। मैंने तो लाख समझाया उसे कि प्रबोध बाबू गैर थोड़े ही हैं। अरे अपने ही तो आदमी

हैं। पर वह मानती कब है। बताइये मैं क्या करूं। सुबह से शाम तक बैल की तरह पिलता हूँ। अठारह अठारह घंटे काम करता हूं और उसके बाद भी—'

प्रबोध ने चुन्नीलाल के शरीर में एक नया ढंग, प्रशंसा, पिपासु आत्मा के अभाव में कुंठाओं को विकास देने वाली हीन आत्मा के दर्शन किये। वह अब भी कह रहा था, 'मेरी तरफ से कोई गैर बात नहीं है, पर उस उल्टी खोपड़ी की औरत को कैसे समझाऊं। जरा आप ही बताइये।'

'ठीक है, मैं खांस दिया करूंगा और कुछ।'

'बस कृपा है। क्यों लोग गा बजाकर कटघर में पांव डाल देते हैं, कुछ भी तो समझ नहीं आता।'

'धीरे-धीरे सब आ जायेगा।'

'अजी क्या खाक आयेगा। अगर·······' कुछ कहते-कहते रुका, फिर हाथ जोड़ कर बोला—'अच्छा तो प्रबोध, बाबू।' बिना उत्तर पाये वह लदर पदर उतर गया।

प्रबोध को याद आया—'किस लंगूरनी के पल्ले बंध गया हूँ।' मगर दिमाग ने जोर डाल कर कहा—'यह तो गलत है। हूर के पहलू में लंगूर होता है, लंगूर के पहलू में हूर नहीं' फिर यकायक सुमित्रा का सौम्य-प्रभाव मय चेहरा याद आ गया। और फिर याद आई सुन्दरता, और कुरूपता की खलील जिब्रान वाली उक्ति।

उक्ति का अर्थ था—दुनिया में जो चेहरे खूबसूरत नजर आते हैं, वे असल में बदसूरत हैं और जो बदसूरत नजर आते हैं वे होते हैं खूबसूरत।

किन्तु यह भी तो हो सकता है कि सुमित्रा, जैसी भोली नजर

आती है—उसका मन भी कहीं आसपास चक्कर काटता हो। और दरअसल बात यही थी।

सुमित्रा का जन्म एक कुलीन परिवार में हुआ था। यह ठीक है वह कभी झूले में नहीं झूली, किन्तु कभी कोई मुसीबत उठाई हो, सो भी नहीं।

वे सात भाई बहिन थे—और दो माता पिता। एक नौकर, एक नौकरानी, और कभी-कभी आटा पीसकर दे जाने वाली एक ब्राह्मणी।

जिस तरह से कुछ लोगों में परिस्थिति वश हीन भाव उदय हो जाते हैं और वे हर बात में हिचक महसूस करने लगते हैं उसी तरह कुछ लोगों में उत्कृष भाव आवश्यकता से अधिक आ जाते हैं। सुमित्रा के घर था, बाहर था और साथ में काफी शोर शराबा भी, इसलिए उसके दिमाग में एक महत्वाकांक्षा घर कर गई। वह आसमान पर उड़ना चाहती थी, फूलों और बहारों से खेलना चाहती थी। किन्तु हिन्दुस्तान में भारतीय नारी है क्या ? सिर्फ एक गाय, अबला गाय और जो गाय रस्सा तुड़ाने का प्रयत्न करती है, उसका जंजीर पाश और भी अधिक कस दिया जाता है।

यही हुआ। दहेज की समस्या अटकी और सुमित्रा की शादी हो गई चुन्नीलाल से। एक अनाथ, किन्तु पैसा पकड़ युवक जो उसकी तरह ही आसमान छूने के सपने देखता था। और हर आदमी के तलवे चाटने को तैयार हो जाता था जो उसे कारूं के खजाने का पता दे दे।

यहां आकर सुमित्रा ने देखा असल जिन्दगी तो बीत चुकी है। अब उसका छाजन बाकी है, जो कभी भी उड़ सकता है। सेमल के फूल की तरह—पक जाने पर रूई उड़ सकती है। पहले उसे पैसे की इच्छा

थी। कुछ जेवर हों, साड़ियां हों, अच्छा मकान हो। एक छोटा सा घर, बीच में तुलसी का पौदा, मधुर चाँद और चुन्नीलाल। किन्तु धीरे-धीरे ये सब बातें, ये इच्छायें बिलकुल नष्ट हो गईं थी। अब वह चाहती थी एक छोटा सा घर, तुलसी का पौदा, राजीव की किलकारियां और चुन्नीलाल की मुस्कान।

किन्तु चुन्नीलाल की मुस्कान खरीद ली थी महत्वाकांक्षाओं ने। वह पैसे के लिए मुस्करा सकता था, रो सकता था, तिलमिला सकता था और सिसक सकता था। जैसे आदमी नहीं रिकार्डिंग मशीन हो—एक गुड़िया हो, एक यंत्र हो।

चुन्नीलाल जुआ खेल सकता था, सट्टा लगा सकता था, भाग सकता था, दौड़ सकता था—शर्त यह है कि पैसा होना चाहिये। और एक बार वह भी सच्चिदानन्द के चक्कर में आ गया। किन्तु संस्कृत की अनभिज्ञता ने उसे मुड़वा दिया। अब भी थोड़ा बहुत अवशेष भाल उनकी डाढ़ी है जो लगातार बढ़ती ही चली जा रही है। वह डाढी जो सुमित्रा के लाख कहने पर न कटी वह एक आशंका से ही कट गई। आशंका यह नहीं कि चिड़िया घोंसला बनाती थी, या राजीव खींच सकता था, नहीं बल्कि आशंका थी मौसी जो आगरे से आ रही थी, जिसके नाम बैंक में तीन हजार रुपया है, दो हजार का जेवर है—एक मकान है जिसका किराया बावन रुपये है और जो अब तक बाँझ ही नहीं अपने आपको एकाकी बनाने में, जिसने सिन्दूर खोने में एक सी महत्वता प्राप्त की थी। वह संभवतः राजीव को देखकर उसे अपना दत्तक पुत्र घोषित कर दे। इसके लिए उन्होंने न केवल अपनी शेव कटाई, बल्कि राजीव के लिए भी एक अच्छा कपड़ों का जोड़ा खरीद दिया।

मौसी आई—जिस तरह आंधी आती है और उस तरह लौटी जिस तरह फैली हुई बिमारी, घिरी हुई बाढ़ धीरे-धीरे लौटती है। उसने

राजीव को देखा, दुलारा, पुचकारा और फिर देखा पिस्ते बादामों का ढेर, मूंग की दाल का हलवा और चुन्नीलाल का कातर मुंह, मलीन मुद्रा, खुशामदी पाल्सन के बड़े-बड़े डिब्बे।

चुन्नीलाल ने टैक्सी की, मौसी को दिखलाया लाल किला, बाहर से जामा-मस्जिद, नीचे से कुतुब-मीनार। और पांडवों के जमाने का पुराना किला--जहां शरणार्थी रहते, शरणार्थियों से पहले बन्दर रहते थे, और मौसी बार-बार उससे एक बात पूछती कि कृष्ण कहां पर रहता था। मौसी सबको देखती, समझती और फिर उपेक्षा की दृष्टि डाल कर कहती--'ए है दिल्ली—अरे रोजा ताज के सामने है क्या।'

उसने बिड़ला मंदिर देखा, गीता भवन देखा और फिर गौरी-शंकर का विशाल मंदिर। किन्तु क्योंकि उस वक्त उसे भूख लगी थी, इसलिए चुन्नीलाल को पकड़ कर बोली—'एह चुन्नी लौटो—इतनी भीड़ है हे भगवान.....'

रास्ते में चुन्नी ने सुझाया कि वहां जहां वह रहता है, वहां कोई अच्छा वातावरण नहीं है। औरतें नंगी नहाती हैं, बच्चे गालियां बकते हैं और दिन मे दो नहीं तीन बार सिर फूटते हैं। अगर राजीव यहां रहा तो उसका विकास रुक जायेगा।

मौसी बोली—'अरे, यहां कहा लरिका गाली बके---इनका दिया जोरू, कठी करके खा जाऊं, दिन भर अक्कास पत्ताल एक करें और...'

कभी कभी चुन्नीलाल मौसी को देखकर भयभीत हो जाता था। बात यह थी कि मौसी ने यहां चांदनी चौक की दुकान में जो नकली दांत लगवाये थे, वे अक्सर हिलते थे। और उन्हें जमाने के लिए मौसी इस तरह मुंह चलाती थी, जैसे दांत पीस रही हो। और

चुन्नी लाल समझता था कि मौसी को अब आया गुस्सा।

जाने से एक दिन पहले उसने सुमित्रा से पूछा—'बोलो, कहा कहत हो। हम लिये जांय राजीव को—

'मैं कैसे कहूँ जी,—आप दादी ठहरीं, और वो बाप।'

'ठीक है मैं चुन्नी से ही पूछूंगी।' किन्तु चुन्नीलाल जैसे ही आये, उसने अवसर पाकर पूछा—'क्यों जी राजीव को भेज दोगे?'

'जरूर भेजूंगा....'

'मगर जी...'

चुन्नीलाल जोर से चीखा, 'सुमित्रा। मैंने जब-जब तेरी बात मानी है, नुकसान उठाया है। क्या बुराई है वहां भेजने में?'

'मैं कब कहती हूँ बुराई है। पर है तो वो बच्चा और आगरे में मौसी जी का घर—ना जी ना, मैं नहीं भेजूंगी।'

चुन्नीलाल बोले—'तू क्या तेरा बाप भी भेजेगा। क्यों नहीं भेजेगी? क्या है वहां? शेर बैठे हैं, या नाहर ताक लगाये हैं, बोल—'

'कुछ भी हो मेरा मन नहीं ठुकता।'

'राजीव की जिन्दगी बिगाड़ सकती है—उसका भविष्य बिगाड़ सकती है। उसे जिन्दा मार सकती है, किन्तु वसे तेरा मन नहीं ठुकता, हां।'

सुमित्रा ने रोकर कहा—'हां।'

किन्तु वह थी कौन रोकने वाली। वह रोती रही और कलपता, आंसू बहाता राजीव उससे छीन लिया गया। बिना किसी रस्म के मौसी उसे ले गई और तब से जिन्दगी में एक घोर विषाद छा गया।

पहले वह काम करती थी, राजीव के लिये। उसकी किलकारी के लिए, उसकी हंसी के लिए, तुतलाती आवाज के लिए जो उससे

दूर-दूर होती जा रही थी। एक अजीब सा नैराश्य, अजीब सी उदासी चारों ओर मंडराती और पिंजरे में बन्द पक्षिणी की भांति वह जाल पर बैठी नीचे ताकती रहती जहां सच्चिदानन्द रहता था—ऊपर से चलने वाली आरे की आवाज को सुनती रहती जो पार्टीशन बनाने वाले बढ़ई करते। चारों तरफ खामोशी का एक अजीब सा आलस रहता और उस सन्नाटे के आलस में आकाश की प्रबुद्ध नीलिमा के बीच अक्सर वह राजीव की भोली सूरत देखा करती थी, जो उससे दूर-दूर बहुत दूर चला गया था।

दाल फटकने बैठी तो एक कागज उड़ता हुआ चला आया। किसी हिन्दी कोर्स किताब का छपा कागज था—और उसमें यशोदा उद्धव संवाद अंकित था। यशोदा उद्धव से कृष्ण के बारे में बहुत सी बातें पूछती है, खाने की, पीने की, सोने की और फिर पूछते-पूछते उदास हो जाती है।

उसने पढ़ा—जाने कैसे आंसू उमड़ पड़े और सारा कागज भीग गया। सोचने लगी राजीव भूल गया उसे उसकी गोद को, उसके प्यार को, उसके दुलार को। काश उसके पंख होते वह उड़ जाती। काश, उसके सामने उद्धव होता और वह उसके बारे में पूछ सकती। कालिदास के किसी बादल को मेघ दूत बनाकर संदेशा भेज सकती कि वह उसके बिना कितनी बेचैन है, कितनी उदास है।

किन्तु वहां था क्या—लकड़ी पर चलने वाले आरे की आवाज, कुछ थोड़ी बहुत खटर पटर और शून्य को चीर डालने वाली खामोशी जो उसके दिमाग में सर्प की तरह बैठ गई थी कुन्डली मार कर।

: ६ :

बुआ का खत आया, जिसमें इधर उधर की बात के बाद था—

'प्रबोध, मैंने वह खत तो किरण को दे दिया था, किन्तु वह साथ का खत मांगती है। बता तो कहां से दूं। इस बार जरूर लिख भेजना, वह समझती है प्रबोध मैं उससे कुछ छिपाती हूँ।'

उसे अपनी मूर्खता पर बड़ा क्रोध आया और फिर उसने देखा, किरण का हस्त लेख। बहुत बड़ी आदमिन हो गई है ना, खत मंगाकर खत लिखना चाहती है। उसने फैसला किया कि मर जायेगा, किन्तु खत नहीं लिखेगा। उसने बुआ को खत लिखकर इस बात की ताकीद की कि वह जो खत उसे लिखना था, वह स्वयं अपने आप तक रखे। किसी गैर को दिखाने का प्रयास न करे।

खत डाल देने के बाद फिर अपनी मूर्खता उसे मालूम हुई। बुआ तो थी निरक्षर—वह भला कैसे यह खत अपने तक सीमित रख सकती थी। अपने प्रति हीन भावों में एक और वृद्धि हुई और उसे लगा जैसे इनमें निरन्तर वृद्धि होती जायेगी। पहले छत पर, बरसाती पर अपना एक एकाधिकार तो आया और अब तो उस पर भी मकानदार की लड़की इन्दू का अधिकार हो गया था, जहां वह न बोल सकता है, न फुसफुसा सकता है और न गुनगुना सकता है।

अक्सर वह रात को जब लौटता था जब उसकी आंखों में नींद घुली होती थी। इससे पहले आठ बजे तक वह पुस्तकालय के संदर्भ विभाग में पड़ा रहता था। इसके बाद दिल्ली के कुछ शांत किन्तु वैभव पूर्ण खडहरों में घूमता रहता। इस घूमते वक्त वह अक्सर अपनी जेब टटोलता और यदि अवसर-वश वहां दुअन्नी मिल जाती तो वह उन सस्ते होटलों में जाकर एक कप चाय पीता जहां बहुत ही कर्कश आवाज में सिनेमा के सस्ते प्रचलित गीतों के रिकार्ड बजते थे और वहां इस किस्म के नवयुवक बैठे रहते थे जो सब सपने में फिल्म ऐक्टर, निर्माता और निर्देशक बनने के स्वप्न देखा करते थे। वे जान बूझकर दिलीप की

तरह बाल बढ़ाते, राजकपूर की तरह पांवचे जोड़ते, बालों में रूखापन स्थिर रखकर हर गाने पर झूम पड़ते। वे जो कुछ कहते, वह बहुत ही अजीब अंदाज से कहते, झूमते गाते और घंटों ऐसी सड़ी गली, अकर्मण्य योजना बनाते जो सिर्फ सपनों में भी अधूरी पनप सकती है। वह ऐसे होटलों में जाता, चुपचाप चाय पीता और उसके बाद दिमाग में कुछ ऐसी बौखलाहट फैलती महसूस करता और ऐसे भागता जैसे किसी का कुछ चुरा कर भागा हो। कभी-कभी उसके साथ सच्चिदानन्द भी रहता था, किन्तु वह उसके साथ से कभी भी प्रसन्न नहीं होता था।

इसका एक कारण था। सच्चिदानन्द में समयगत यौन वासना की काम कुंठायें इस तरह तीव्र हो गई थीं कि वह हर बाजार में चलती औरत पर अपना जादू चलाने के लिए उसके पास से गुजरना चाहता। भीड़ होती तो उसे छू लेने में भी कम गर्व अनुभव नहीं करता और अक्सर हर औरत को गौर से घूर लेने की प्रवृति बातचीत के तारतम्य को तोड़ देती थी।

वह कभी-कभी रेखा के पास जाने की सोचता, किन्तु बहुत कम जा पाता। जाने के लिए न सही, एक स्तर बनाने के लिये तो कुछ करना ही होता है।

उस दिन जैसे ही वह 'सैनमैरिनो' में घुसा, एक अजीब सी हृष्ट पुष्ट किन्तु देखने में बहुत ही अक्खड़, मूर्ख लड़के ने स्वागत में उपहास सा करते हुये कहा—'आइये, मास्टर जी !'

उसे काटो तो खून नहीं, यह तो उसी के स्कूल के मैट्रिक का विद्यार्थी था। क्या सोचेगा अपने मन में—किन्तु वह लड़का नहीं आदमी था—सब तरफ थापर के नाम से मशहूर। उसने चाय पिला कर ही पीछा छोड़ा। और एक ऐसी घनिष्टता स्थापित

करली थी जो एक दो मुलाकातों में ही बहुत कम होती है।

किन्तु जब वह निकला तो उसे उसकी आत्मा, आत्मा की आवाज धिक्कार रही थी। वह बचता, बचाता—इधर उधर तिलमिलाता घर दौड़ पड़ा और तेजी से अपने कमरे में पहुँच कर बड़ बड़ाया, 'वह लौट जायेगा, लौट जायेगा। नहीं रहेगा यहां।'

दो क्षण बाद ही किसी ने द्वार पर आवाज दी।

वह डरा, कौन हो सकता है। द्वार खोलकर देखा बाईस साल की इन्दू मुस्कराती सी निश्चिल मुद्रा में खड़ी है। वह मौन, वह भी मौन। अन्त में इन्दू ने ही कहा—'पानी होगा आपके पास। वह नौकरानी रत्ती की बच्ची जाने क्या जाने, खाकर ही पीछा छोड़ेगी।'

प्रबोध ने कुछ नहीं सुना धीरे से उठा कांच का गिलास उठाया सुराही से पानी निकाला और उसकी तरफ बढ़ा दिया। इन्दू ने पानी पिया, और गिलास रख कर पूछा—'लखनऊ से आये हैं आप ?'

उसने सिर हिलाकर कहा—'हां।'

'इस साल तो रहेंगे ना।'

उसने फिर सिर हिलाकर हामी भरी। इन्दू डरी, फिर झिझक कर बोली—'आप बोल नहीं सकते !'

वह बोला—'अगर मैं बोलूंगा तो आपको चक्कर आ जायेंगे।'

'क्या—' वह फिर चुप। इन्दू एक कुटिल मुस्कानों से बोली—'बाबू जी ने कहा होगा, आप से।'

'हां—

'और आपने सच मान भी लिया ?'

उसने पूछा—'तो क्या आप बीमार नहीं हैं ?'

'नहीं।'

'और आपको आवाज सुनकर चक्कर नहीं आते।'

'नहीं।'

प्रबोध फिर झेंप गया। कुछ देर चुप रहा था तो इन्दू ने स्वयं कहा, 'क्यों यकीन नहीं आता। आप गाइये, हंसिये, रोइये मुझे कुछ नहीं होगा।'

'तो चौधरी साहब ने क्यों कहा? उन्हें कहना चाहिये था....'

'हां।'

'यह आप कह रही हैं।'

'हां, हां मैं ही कह रही हूं। दरअसल मैं बहुत बड़े बाप की बेटी हूँ ना। और मेरे हाथ में विवाह की रेखायें हैं ही नहीं।

प्रबोध ने पूछा—'क्या कह रही हैं आप?'

'जाने दीजिये---आपको परेशान नहीं होना चाहिये।' कहकर इन्दू कुछ देर चुप रही और फिर उसकी मेज पर पड़ी एक किताब को उठा कर बोली—'इसकी तो आपको जरूरत नहीं होगी ना।'

'नहीं—'

'तो फिर लिये जाती हूं, कल लौटा दूंगी।' वह चलने लगी तो प्रबोध ने पुकारा—'जरा सुनिये तो।'

'आपकी गणित के प्रति रुचि बहुत है क्या?'

इन्दू बोली—'बिल्कुल नहीं। यह गणित पढ़कर ही तो जिन्दगी खराब कर ली। न बी० ए० पास करती और ना ही कैद होती।'

'आप कैद हैं।'

वह तमक कर बोली—'आपको दिखाई नहीं देता। मैं एक बड़े बाप की बेटी हूँ।'

'सो तो जानता हूँ।'

'और बी० ए० पास भी किया। उस हालत में जब कि चौधरी परिवार के लड़के सातवीं, आठवीं में फेल होने के बाद या तो फौज में भरती होकर सेहत बनाते हैं, या चौधराठ का नशा सवार कर मूंछें मरोड़ते हैं।'

'तो फिर ?'

'फिर क्या, अब सारी ही रामायण सुनोगे। अगर यह किताब हिसाब की है तो रख लो। मुझे कोई उपन्यास चाहिये।'

'हां हां, एक मिनट ठहरो,' कहकर उसने अटैची से एक हिन्दी उपन्यास देकर कहा—'तो यह ठीक रहेगा ना !'

'आपने पढ़ा है इसे। रोना वोना तो नहीं है इसमें।'

प्रबोध चुप रहना चाहता था किन्तु फिर भी बोल पड़ा, 'क्यों, हमने तो सुना है कि दुखान्त उपन्यास ज्यादा असरदार होते हैं।'

'पालनों में झूलने वालों के लिए, दिन रात रोना धोना ही जिनकी किस्मत में लिखा है उन्हें रोने धोने में रस नहीं आता। उपन्यास चाहिये हंसने हंसाने वाला।' फिर कुछ सोचकर उसने किताब उठाली और जाते जाते कह गई—'अच्छा हजूर !'

प्रबोध को जैसे यह लड़की इस धरती की, इस दीन और दुनियां की न होकर किसी और जगह की हो। उसकी आवाज जैसे सात सोतों से फूट कर निकली हो, उसने मन ही मन इस लड़की के रूप में मुसीबत से लोहा लेने वाली स्त्री जाति को नमस्कार किया और सो रहा किन्तु अगली शाम जब थापर ने उसे रोककर चाय पी जाने के बाद ही बिदा किया तो उसे मिला सच्चिदानन्द। बहुत ही विकृत, पिटा सा रूप, और हाथ में पोटली किये हुये।

सड़क पर ही उसके पद स्पर्श करके वह बोला—'माफ कर देना, प्रबोध, अगर कोई गलती हुई हो तो।'

'अरे, यह क्या ?'

'कूंच की तैयारी है बन्धू । अब दिल्ली में नहीं रहूँगा, यहाँ सांस लेना भी गुनाह है ।'

'मगर हुआ क्या ?

'बता दूंगा बन्धू बता दूंगा ।' कह कर वह उसे पार्क में ले गया और वहां जो उसने बताया वह अलादीन के चिराग में अंधेरा से कम अजीब न था ।

वह गत दो बरसों से नीचे रह रहा था और सुमित्रा के प्रति एक पड़ौस की मां बहन जैसा व्यवहार कर रहा है । किन्तु कुछ दिन से सुमित्रा ने उसके कथानुसार लिफ्ट देना शुरू किया । पहले वह मुस्कराई उसे देखकर ।

'अरे ।'

सच्चिदानन्द बोला, 'बन्धू तुमने औरत नहीं देखी । औरत एक जाल है, फरेब है और इससे ज्यादा क्या कहूं--कितनी पिशाचनी यह सुमित्रा निकली, छीः छीः ।'

'मगर तुम तो आज की घटना बता रहे थे ना ।'

'क्या बताऊं, बन्धू । न पूछो तो ही ठीक है । अन्नजल उठ गया है ना दिल्ली से । होनी होकर पड़ी । पर मैं इसे छोड़ूंगा नहीं, बिल्कुल नहीं छोड़ूंगा । जानते हो आज मुझे उसने बुलाया, जरा ट्रंक उतार देना भइया ।'

'तो तुम गये ।'

'तुम्हीं कहो, मुझे जाना चाहिये था या नहीं । कुछ नहीं पड़ौसी तो था ही । समझे, तो मैं गया । पर वहां ट्रंक नहीं था, पलंग था, प्रबोध पलंग । मैं तो पहले ही कहता था कि चुन्नीलाल इसे संतुष्ट नहीं कर सकता । और हुआ भी यही, वह पड़ौसी होने का

कितना बड़ा मोल लेना चाहती थी—छीः, छीः, छीः ।'

'फिर—'

'फिर वही हुआ जो त्रिया चरित्र कहलाता है । मैं अपना तप, जप सुफल कैसे नष्ट कर सकता था । कैसे करता, प्रबोध । मैंने सैंडिल खाये, जूते खाये और इस मायावी दुनिया को अब हमेशा हमेशा के लिए छोड़ कर जा रहा हूँ । मुझे आशीर्वाद दो प्रबोध भैया—

प्रबोध ने कहा, 'सच्चिदानन्द भइया, मैं आर्शीर्वाद नहीं दे सकता । सिर्फ एक समानता के रूप में, मैं तुम्हें बिदा कर सकता हूँ । पर मुझे ऐसा करने में बहुत शोक और शक है ।'

'शक...'

सचमुच उसका शक वास्तविक था । सच्चिदानन्द में जिस तरह काम वासना जग रही थी, उससे वह परिचित था और जो कुछ उसने कहा वह बिल्कुल गलत था । वास्तविक तथ्य था एक चित्र जिसके सैक्सी नितम्बों से प्रभावित होकर पहले उसने दुर्गा का आह्वान किया और फिर दबे पांव बीच की मंजिल में चढ़ गया ।

एक दम घर में प्रवेश किया ही था कि सुमित्रा ने कहा—'कौन कौन हैं ?'

'शी' : उसने चुप रहने का आदेश देकर कहा, 'मैं हूँ, देवी ! मैं साक्षात कामदेव !'

'क्या ?'

'कामदेव का नाम नहीं सुना देवी । आज दैवी विधान और दुर्गा मां की इच्छा है कि हम एक हो जायें । अब तक जो जो आपने क्रिया की हैं उनसे देवी....'

'आप कहना क्या चाहते हैं ?'

'कहना नहीं बतलाना चाहता हूँ देवी, तुम मेरे लिए वही हो जो

स्कन्द गुप्त के लिए देव सेना थी। राम के लिए सीता थी, अर्जुन के लिए चित्रा थी और....' कहते कहते हांफ गया।

'तो आज आप पीकर आये हैं ?'

'निश्चित देवी। किन्तु मामूली शराब नहीं, देवी। तुम्हारे रूप का आसव मैंने पिया है। समझीं, इसके साथ ही उसकी कुत्सित क्रियायें शुरू हो गई थी। जिसके प्रत्युत् में एक शोर, सेंडिल की मार और निवासर्न....'

अब वह जा रहा था, दिल्ली छोड़कर, जाते जाते बोला, 'कहीं किसी आश्रम से खत लिखूंगा, प्रबोध बन्धु। खत का जवाब तो दोगे ना !'

'जरूर'

उसकी निस्तेज आंखें चमकीं और वह आगे बढ़ गया।

: ७ :

अगली रात को इन्दू ने दरवाजा खटखटाया, तो प्रबोध ने द्वार खोलने से पूर्व ही काँच का गिलास पानी से भरकर रख लिया और द्वार खुलते ही उसने प्रस्तुत किया।

'धन्यवाद ! मगर आज मैं पानी पीने नहीं आई हूँ। मेरे पास भी सुराही है, गिलास भी है, पानी भी है और पीने के लिए हाथ भी।'

'तो फिर।'

वह बैठ गई। बहुत लापरवाही से बोली—'सब कुछ पास हो जाने के बाद भी कुछ की जरूरत तो होती ही है प्रबोध जी। मै सारे दिन तुम्हारे इस दरवाजे की तरफ देखती रही।'

'क्यों ?'

'जाने कुछ आशा सी बंधती नजर आती थी। कैसी नरक यातना है। बाबू जी अपनी इज्जत के लिये मुझे बीमार रखते हैं। हिस्टीरिया के दौरों का प्रलोभन रचाते हैं, पर जानते हो असल बात क्या है ?'

'क्या है ?'

'सकल पदारथ या जग माहीं, कर्म हीन नर पावत नाहीं। मैंने बी० ए० पास किया है ना। नंगे सिर पढ़ने जाती थी, कौन करेगा मुझ से शादी।'

'इन्दू जी--'

'रोकना चाहते हो। बहुत बड़ा पाप कर रही हूँ ना—लड़की को क्या हक है कि वह अपनी शादी के लिये कहे। सच कहती हूँ प्रबोध जी मेरे दिल में कभी शादी की बात नहीं उठती, पर क्या जीने की बात भी नहीं उठनी चाहिये ?'

'जरूर उठनी चाहिये इन्दू जी, और मैं तो यह कहता हूँ—' कहते कहते प्रबोध रुका, फिर बोला, 'मैं तो यह कहता हूँ इन्दू जी आप तोड़ डालिये यह जादू, जला डालिये इस स्थिति को, और काट डालिये यह बन्धन।'

'कैसे ?'

'कैसे ?' वह सोच में पड़ा और चुप हो गया।

कुछ देर बाद इन्दू बोली : 'तिनके का सहारा बहुत होता है। बोलो दोगे मुझे सहारा ?'

'मैं—'

'हाँ मैं यहां से भागना चाहती हूं, किन्तु भागकर वापिस नहीं आना चाहती। इसके लिए मेरे पास दो हजार रुपये के करीब अपने हैं। आप……'

'कहिये, कहिये—'

इन्दू बोली : 'मैं आपको एक हजार रुपया दूंगी। कहोगे तो साथ जिन्दगी काट दूंगी। किन्तु अगर मन न भरे तो मैं सिर्फ तुमसे चाहती हूँ कि·······'

'बोलिये ना।'

आंखों में आंखें डालकर इन्दू बोली—'वह कोर्ट में होती है ना·······'

'अच्छा, अच्छा, सिविल मैरिज····मैं सोचकर बताऊंगा। 'पर एक बात पूछूं?'

'हां!'

'शादी के लिये जो जो विशेषतायें होनी चाहिये, वह मुझ में हैं?'

'आइने के सामने खड़े हो जाओ, पता लग जायेगा!'

'और—यह प्रेम कब से हुआ?'

कुछ लजाकर वहां से भागती हुई इन्दू ने उत्तर दिया—'सोचकर बताऊंगी।'

इसी बीच नीचे से 'तड़ाक' चाँटा मारने की आवाज आई।

जिस तरह बरसात में सूरज के दर्शन दुर्लभ होते हैं उसी तरह राजीव के चले जाने के बाद, सच्चिदानन्द कांड के बाद सुमित्रा के मुख का दर्शन भी दुर्लभ होता जा रहा था और आज थी उसकी चरम सीमा।

आगरे से एक पोस्ट कार्ड आया था। लिखा था, 'राजीव यकायक मुंडेर पर से गिर पड़ा है। किन्तु घबराने की बात नहीं है, ठीक हो जायेगा। शेष···'

राजीव छत से नही मुंडेर से गिरा था। कितना बड़ा बज्रपात

होता है माँ के लिए और चुन्नीलाल व्यस्त थे सूद वसूलने में। इसी सिलसिले में वे अदालत में दावा कर चुके थे और व्यस्त थे कि किसी तरह कुर्की लेकर कर्जदार का घर दर कुर्क करवा सकें। अदालत, वकील और वकील का मुंशी--

घर पहुंचे तो बजे थे ग्यारह। उन्हें लगी थी भूख और उसने कहा, 'क्यों जी, कोई गाड़ी आगरे जाती है क्या ?'

'हां हां--'

'तो चलो ना--राजीव मुंडेर से गिर पड़ा है।'

'तीन दिन नहीं जा सकते।'

'क्यों चाहे वह मर ही जाये ?'

इसका प्रत्युत्तर था चांटा। नमकीन आंसू कपोल पर आये और धुंधले प्रकाश में सूख गये।

: ८ :

तय हुआ था कि एक गवाह लेकर इन्दू मय सर्टिफिकेट के काश्मीरी गेट के पास पहुँच जायेगी और वहीं से प्रबोध एक गवाह को साथ लेकर रजिस्ट्रार के यहां चला जायेगा।

किन्तु कोई गवाह ढूंढ़ना भी तो आसान बात नहीं थी। थापर से मुलाकात के नाम पर क्या था, एक दो कप चाय। और कौन हो सकता है--बहुत कुछ सोच समझने के बाद उसे याद आया था। 'हरिकुमार !'

'हो सकता है.......' एक आशंका उठी और बैठ गई। यकायक किरण का चेहरा सामने घूमा--एक मासूम, आत्माभिमानी लड़की और दूसरी ओर इन्दू। तराजू के पलड़े इधर उधर झुक रहे थे और

वह प्रबोध जो दो अटैचियां रेलवे क्लाक रूम में रख आया था। अब सोच रहा था क्या यह ठीक होगा।

इन्दू उसका पतित्व स्वीकार करेगी। कितनी जरा सी मुलाकात कितना थोड़ा सा व्यवधान है और कितना बड़ा काम है—शादी।

पलड़े बराबर थे। एक तरफ इन्दू का अनजान मत था, किन्तु दूसरी तरफ था किरण का आत्माभिमान। वचन वद्धता का एक बाट इन्दू के पलड़े में रखा गया और मन ने कहा : चलो यह भी एक ऐतिहासिक 'कार्य' कर डालो। आखिर है तो इन्दू भी एक लड़की। भले रश्मि न बदली हो, किन्तु उसका यह विश्वाम अब भी अटल था कि इन्सान बदला जा सकता है और वह उसे बदल लेगा।

इसके साथ-साथ घूमे दो हजार रुपये, बी० ए० की डिग्री और इन्दू की निश्छल हंसी। कम से कम जिन्दगी के आर्थिक कष्टों से मुक्त तो रहेगा ना ? हां यह ठीक है, वह शादी करेगा। शादी, शहनाई, कोर्ट और गवाह""।

यकायक उसे हरिकुमार की याद हो आई और साथ ही रेखा की भी जो हरबार उससे मिलने का वादा लेती थी। वह पहुँचा टैगोर रोड। धूप में कुर्सी बिछाये रेखा बैठी थी। उसके आते खिल पड़ी—'आओ, रास्ता भूल पड़े थे क्या ?'

'ऐसी तो कोई बात नहीं है, जीजी।'

'नहीं, वैसी ही बात है। एक मिनट बैठो तो—' कहकर वह उठी और प्रबोध ने देखा रेखा अब रेखा जीजी नहीं मास्टरनी रेखा हो गई है। उस मेज पर मांटसरी, बेसिक आदि शिक्षा पद्धिती के बड़े बड़े नोटस पड़े थे। यह सब शरत् के लिये था। वास्तव में वह एक ऐसा सार ढूढ़ लेना चाहती थी जो उस जैसी प्रवृति वाले बालक का सुधार कर सके।

दो क्षण बाद ही रेखा एक मोटा सा लिफाफा लाई, जिस पर लिखा था, श्री प्रबोध कुमार जी, एम० ए० दिल्ली।

'यह कौन है महती महान् महाचार्य ?'

'महाचार्य नहीं —मिस किरण ! जनाब, यह लड़की है जो तुम्हें दिया लेकर खोजती है और आप हैं.........'

'चिराग तले अंधेरा।' फिर कुछ कागज उथल-पुथल कर, लिफाफा फाड़ कर बोला, 'धत् तेरी की। यह मुझे ढूंढ़ती है जीजी या इन सवालों के जवाबों को।

'हाँ।'

'देखो तो किसी परीक्षा में बैठना है ना--सवालों के जवाब चाहिये।'

'तो है तो तुम्हारी शिष्या।'

'सो तो है ही—' कहने को तो प्रबोध यह सब कह गया किन्तु फिर भी उसे किरण की बुद्धिमता से प्रभावित होना पड़ा।

उसने पूछा—'क्या हो रहा है जीजी, और क्या हाल है ?'

'आप तो बताइये जनाब। कम से कम अपने रहने का ठिकाना तो देते जाओ।'

'तुम आओगी जीजी।'

'जरूर आऊंगी, मगर बताओ तो। अच्छा तो चाय पीओगे ना तुम।'

'नहीं, जीजा जी कहां होंगे ? बात यह है कि...'

'क्या बात है ?'

'कोई खास बात नहीं।' जाने क्यों एक अजीब सी हिचक उसके दिमाग में आ रही थी, वह दस पन्द्रह मिनट बैठ कर चला आया। वह सीधा थापर के पास गया, और बोला--'सुनो तुम्हारी उम्र क्या है ?'

'तेईस साल—'

'तो आओ मेरे साथ·····' राह में उसने उसे सब कुछ बता दिया और थापर उसकी सब बातें मानता हुआ चलता रहा, किन्तु जब तक वे वहां पहुंचे, उन्हें निश्चित समय से बीस मिनट की देर हो चुकी थी और उस जगह जहां इन्दू को खड़ा होना चाहिये था चौधरी बजरंग खड़े थे। उसे देखते ही लपके: 'प्रबोध ! यह कौन हैं तुम्हारे साथ ?'

'जी····यह दोस्त हैं।'

'हां हां—इनसे कह दो कि अब यह तुम्हें छोड़ दें। तुम्हें अकेला चलना होगा।'

'अकेला।'

'हां, जल्दी करो वक्त कम है।'

प्रबोध के दिमाग में घूमा शायद यह भी हमारे प्रति न सही सिर्फ इन्दू के प्रति कोमल भावनायें रखता है और अब शादी कराके व्यक्त कर देगा। उसने थापर से कहा—'तुम्हें तकलीफ दी है···'

'सो कोई बात नहीं। शाम को तो मिलियेगा ना—'

'हां, हां—'

किन्तु बात उससे उलटी रही, उसे सीधे कार में बिठाल कर लाया गया और एक बन्द कमरे में बजरंग ने कहा—'प्रबोध, इधर देखो।'

'जी'

'एक दिन तरस खाकर मैंने तुम्हें रहने को मकान दिया था। और कहा था कि यह घर तुम्हारा है। आज फिर मुझे तुम पर तरस आ रहा है और इस तरस के लिये ही तुम्हें पुलिस में देने की बजाय सिर्फ इस मौहल्ले से किसी को भी अपने बारे में बताये चले जाने को कहता हूँ। समझे ?'

'जी !'

'और आगे किसी चौधरी परिवार में इस तरह टांग न फंसाना। हम चौधरी हैं, समाज में जो नाम है, प्रतिष्ठा है, वह ऐसे ही नहीं मिल जाती। यह देखते हो, क्या है ?' प्रबोध ने देखा दीवार पर चार पांच बन्दूकें लटक रही थीं। उन्होंने एक को उतारा, साफ किया और कहा—'यह बन्दूक हम लोग शिकार पर चलाते हैं। किन्तु यही बन्दूक अपनी इज्जत खोने की बजाय अपनी जान खोने के काम आ सकते हैं। यह मत समझो कि तुम्हें डरा रहा हूं, मैं यह कर भी सकता हूँ।'

'जी, जी हां –'

'तो जाओ ! कल शाम के बाद तुम्हारी सूरत यहां नहीं दिखाई देनी चाहिये।'

'नहीं दीखेगी !'

'तो जाओ—' ऊंचे स्वर से बजरंग ने कहा और जब वह उठा तो उन्होंने उसके देखने से पूर्व ही अपने आंसू पोंछ डाले।

जब जा ही रहा है तो क्यों डरे उसने यकायक पूछा : 'और इन्दू कहां है ?'

'खोज निकालने का इरादा है। मगर मैं जानता हूं तुम वहां से उसे न ला सकोगे। शाम के पांच बजे तक वह आगरे पहुँच जायेगी।'

'आगरें ?'

'हां—पता भी बता दूं। मैंटल हास्पिटल, रोगी नं०.....'

'मगर वे पागल तो नहीं थी।'

'इससे बहस नहीं है। उसे हिस्टीरिया के फिटस आते थे—'

'मगर यह झूठ है।'

'और सच यह है कि देना भला न बाप का, बेटी भली न एक। तुम समझते हो हमारी इज्जत, इस हवेली की इज्जत बेटा, बेटियों से सस्ती, यों तो उसे आगरे भेजा जा सकता था, नहीं गला भी घोटा जा सकता था।'

'क्या आ ?'

'तुम जा सकते हो और सुनो वह अटैची आज शाम तक आ जानी चाहिये।

'आ जायेगी।'

वह निकला तो बहुत ही भयभीत, उदास और ग्लानिपूर्ण था कल से बेघर हो जायेगा। शायद दिल्ली ही छोड़नी पड़े। उसने निश्चय कर लिया, वह दिल्ली छोड़ देगा, कोई फायदा नहीं है' यहां रहने का। किन्तु क्योंकि शाम को थापर ने उसके रहने की समस्या भी हल कर दी। एक निकम्मा सा, सड़ा सा मकान दिखला दिया; इसलिये इस वातावरण से विदा मांगने के लिये, रात भर बसेरा करने के लिये वह दस बजे पहुँचा। सवा दस बजे सो गया और तीन घण्टों में ही उसे अजीब-अजीब सपने दिखाई दिये।

इन्दू की निश्चल हंसी फूट रही थी। कहीं आसपास से ही ऐसा लगा जैसे उसकी हंसी छीन लेने के बाद ही बजरंग पुलिस को ऊपर ले आया और पुलिस उससे अचानक अत्याचार करके पूछ रही थी : 'बताओ कहां है, इन्दू ?'

'पागल खाने में।'

'तुम छोड़ कर आये हो !'

'नहीं ?'

'मगर शादी तो तुम करना चाहते थे, छोड़कर भी तुम्हीं आये होंगे। बोलो···'

'नहीं, नहीं, नहीं ।'

वह चीख पड़ा । थानेदार उसके जोड़ से थप्पड़ मारने ही वाला था कि वह लुढक पड़ा और जब चेतना आई तो उसने अपने आपको जमीन पर पाया । खिड़की से चतुर्थी का अभागा चांद झिलमिला रहा था और उसके पास थी सोचने के लिये अतीत की घटनायें ।

वह दिल्ली आया । बजरंग मिला, सच्चिदानन्द मिला, इन्दू मिली, यह घर मिला और सब सपने की तरह बिछुड़ गया । कोई अन्तर नहीं आया, कोई फर्क नहीं पड़ा ।

अचानक उसे ऐसा लगा जैसे छत पर कोई घूम रहा है, सिसक रहा है । उसने देखा कोई दिखाई नहीं दिया । मन को समझाया, वहम है ।

किन्तु फिर लगा, जरूर कोई है ।

वह तेजी से बाहर आया, अगर न आता तो शायद सारा मौहल्ला जाग पड़ता और सुमित्रा पूरी दो मंजिल से छलांग कर जब पक्के फर्श पर पड़ती तो वह खील-खील हो जाती । किन्तु उसने उसे बलपूर्वक उठाकर अपने कमरे में लाकर पूछा, 'मरना चाहती हो ?'

'हां राजीव भी तो मर गया ।'

'तो—मेरी जिन्दगी भी खराब करना चाहती थी । हां—'

'नहीं ?'

'तो जाओ नीचे । याद रक्खो मरना आसान होता है, मगर इन्सान जीने के लिये है । मरने के लिये नहीं । राजीव तुम से पैदा हुआ था, तुम राजीव से नहीं ।'

'तुम मां नहीं हो ?'

'इसी लिये मां की विशालता का अन्दाजा नहीं लगा सकता । जाओ नीचे मां कायर नहीं होते ?

'अच्छा' वह धीरे-धीरे नीचे उतरी और प्रबोध ने देखा क्षितिज पर कई तारे में एक प्रज्वलित तारा टिमटिमा रहा था। साहस और जिन्दगी का तारा, जो शायद हमेशा लोगों को जिन्दा रहने का, सतत् और सबल। चमेली की छाया, मेंहदी की सुगन्ध और मंदिर के कलश के ठीक ऊपर चमक रहा था : भोर का तारा।

: ९ :

सुबह हो गई।

उसने मकान बदल लिया, जगह बदल ली, किन्तु मन नहीं बदला गया। एक दिन की घटना ने जिन्दगी को ही बदल दिया। दिन भर वह घर पर पड़ा रहा, सोचता रहा और सुबह से शाम हो गई।

जहाँ उसका घर था, वह बहुत ही निकृष्ट जगह थी। दरअसल ऐसी ही काली कटोरी की तरह उसका काला भाग्य था और वह सोच रहा था कैसी अजीब प्रवंचना है। एक बार लखनऊ जाने के निश्चय के बाद भी वह रुका और यहां आ गया।

प्रकाशक हे राम पूछते, 'तुम एम० ए० हो ?'

'हां, वह उत्तर देता।'

'काहे में—'

'अंग्रेजी साहित्य में।'

पूछने वाला खिल-खिलाता, धत् तेरे की अगर हिन्दी साहित्य में होता तो मैं तुम्हें अभी एक 'नोट्स लिखने का आफर कर देता, राष्ट्र-भाषा सर्व हिताय, सर्व सुखाय।' और इसके बाद लम्बी सी डकार लेकर बोलता 'हे राम। जैसे प्रकाशक न हुआ हे राम हुआ, विक्रेता न हुआ, हे राम हुआ।'

प्रबोध बोलता, 'सुनिये मैं हिन्दी में साहित्यरत्न भी हूं। मतलब लगभग एम० ए०—',

'अच्छा, अच्छा—' हेराम ने एक नोट की बात करके पीछा छुड़ा लिया और जाने से पहले बोला : 'क्या लोगे ?'

'मेहनत देख लेना, हम से क्या पूछते हैं ?'

'अच्छा, अच्छा—' हेराम ने जैसे पिंड छुड़ाना चाहा। और जब पांडुलिपि लेकर वह गया तो पृष्ट गिनकर, मन ही मन हिसाब लगाकर पच्चीस रुपये आगे रख कर बोला—'लीजिये, राष्ट्र-भाषा सर्व हिताय सर्व सुखाय— लीजिये, लीजिये ! हेराम—'

'पच्चीस—'

हेराम ने एक रुपया और रख दिया, बोला—'पहले खोलता तो बीस ही देता, रख लो, रख लो। सर्व हिताय, सर्व सुखाय।'

प्रबोध का दम्भ जैसे रो उठा हो। अहं दिवारों को भेद गया हो।

किन्तु उसके सामने थे, छब्बीस रुपये, होटल का बिल, धोबी की धुलाई नहीं सिर्फ प्रेस कराई और मकान का किराया।

उसने छब्बीस रुपये उठाये और चारों तरफ शांति से इधर उधर देखकर बोला : 'आप तो पुस्तकें छापते ही रहते हैं।'

हेराम से पहले उसका सहायक गर्दन उठाकर बोला—'भगवान की कृपा से।'

'तो फिर इसे देख लेना।'

भगवान की कृपा ने पूछा—'है क्या' पर सर्व हिताय, सर्व हिताय, सर्व सुखाय,' हेराम ने अपने गंदे दांत बाहर निकाल कर कहा—'अच्छा जी, अच्छा जी। शास्त्री जी देख लेंगे इसे—हेराम।' किन्तु अगली बार जब वह वहां पहुंचा तो दोनों के मुंह चढे

थे। नमस्कार का उत्तर देते हुये हेराम ने कहा, 'वह हैं क्या, मुंशी जी।'

मुंशी जी के नाम से जरा चौंका, किन्तु फिर बोला—'क्या आपने देख लिया है? दरअसल में वह एक खोज-पूर्ण प्रबन्ध है जिसमें······ कुछ समझ नहीं आता और प्रेस वालों ने पूरे दस फर्मे छाप दिये हैं—यह देखो।' कह कर हेराम ने उसे एक सौ साठ मुद्रित पृष्ठ दिखलाये। उसकी तो आंखें खुल गईं—किन्तु हेराम की वही स्थिति थी जो न निगल सकता था, न उगल जरासी गलती में इतना बड़ा अभिशाप होगा, उसका तो अनुमान उसके दिमाग से बाहर था। किन्तु उसे एक संतोष था, चलो अब एक किताब के लेखक तो बने, भले ही वह किसी की गलती हो, गलत फहमी हो। लेखक तो बन गया ही ना।

कुछ ऐसा उल्लास था कि वह सीधा घर पहुंचा, और अभी आधा घंटा भी नहीं बीता था, कि किसी ने पुकारा—'प्रबोध जी।'

'कौन—जीजा जी, आओ।'

हरि ने कहा, 'जरूर आऊंगा, पर एक बात कहे देता हूं, जनाब पूरी बस्ती के लीडर हो।'

'लीडर—'

'हां, और कमाल है कोई प्रबोध नहीं कहता, सब कहते हैं प्रबोध दादा, यानी···' फिर कुछ सोचकर बोला, 'जानते हो बंगला में दादा का मतलब क्या है?'

'मगर यह तो दिल्ली है, दादा का मतलब गुंडे से भी हो सकता है ना।'

'अच्छा, अच्छा होगा। उठो बाहर चाचा जी इन्तजार कर

रहे हैं। आज विश्वनाथ के घर चलना होगा। जितनी जल्दी फैसला हो जाये सो ठीक है।'

प्रबोध ने पूछा—'तो उन्हें साथ क्यों नहीं लाये ?'

'किसे ? लाला जी को, वे तो गली में ही नाक सिकोड़ रहे थे। आओ, आओ।'

प्रबोध और हरिकुमार दोनों बाहर आये। वहां दिवानचन्द चुप खड़े थे। तीनों नई दिल्ली स्थित एक बंगले में पहुँचे जहां विश्वनाथ पहले से मौजूद था। 'आइये, आइये—' उसने एक भारी भरकम पंडित जैसे व्यक्ति की तरफ संकेत करके कहा, 'आप मेरे पिताजी हैं।'

'और आप ?'

दिवानचन्द ने परिचय देते हुये कहा—'हम हैं भिखारी और भिखारी का परिचय हो ही क्या सकता है, बस समझ लीजिये भिखारी हैं। विश्वनाथ को आपसे छीन लेंगे।'

'विश्वनाथ को, ठीक है इसकी हाथ की रेखायें भी यह कहती हैं कि वह गोद जायेगा। निश्चित जायेगा, क्यों जी कितनी जायदाद है ?'

'जायदाद' दिवानचन्द ने चौंक कर कहा 'बताओ तो हरि—हमारी जायदाद तो निशि ही है ना।'

'निशि.......'

'जी हां निशि। एक पढ़ी लिखी, सलीकेदार लड़की—'

'ओह' विश्वनाथ के पिता ने जैसे कुनैन थूकी हो। थू थू करके बोले, 'छी छी, मैं भी पागल हूं। क्या से और क्या समझ बैठा।' फिर पास खड़े विश्वनाथ की ओर मुंह करके बोले, 'क्यों रे विस्सू, यह तुझे जानते हैं ?'

'हां, और विश्वनाथ जी लड़की को भी जानते हैं।'

'क्यों रे, तू जानता है ?'

'हां––नहीं नहीं पिताजी । वो है ना––दफ्तर में काम करती है ।'

'और तू उससे शादी करेगा ।'

'जी पिता जी !'

'जी पिता जी का बच्चा !' पिता ने सबके सामने उसके मुंह पर कसके तमाचा मारा और बोले, 'बोल, शादी करेगा ।'

'नहीं, गलती हुई ।'

विश्वनाथ के पिता ने तीनों को घृणापूर्ण दृष्टि से देखकर कहा— 'पधारिये महाराज, पधार जाइये ।'

विश्वनाथ जड़ हुआ बैठा था । इस तरह पक्का और मार खाने वाला प्राणी भी इन्सान हो सकता है, यही सोचकर प्रबोध बाहर निकला ही था कि दिवानचन्द उस पर बरस पड़े, 'तुम्हारा ही दोस्त था ना ।'

'क्या दोस्त बनाये हैं । मेरी तो लड़की की जिन्दगी खराब कर दी । कौन करेगा उससे शादी, बोलो ।'

प्रबोध ने कहा––'चाचा जी, लड़की किसी की क्वारी नहीं रहती ।'

'हां हां क्यों रहेगी । एक दम क्वारी । क्या समझते हो कि मैं उसके लिये हाथ फैलाऊंगा । क्या कमी है उसमें विश्वनाथ से ज्यादा कमाती है, समझे, और एक घृणामयी दृष्टि उन दोनों पर डालकर अलग हो गये ।

: १० :

हरिकुमार ने पहली बार जाना कि जिन्दगी परिस्थितियों का सम्मिश्रण है––परिस्थिति जिन्दगी का सम्मिश्रण नहीं ।

वह रेखा को देखता, निशि की याद आने लगती और निशि को देखता तो वे बन्धन सामने आ जाते जो दिवानचन्द ने जान-बूझकर कठोर कर दिये थे। बहुत ही कठोर बन्धन और रेखा--जैसे रेखा को भी उससे उपेक्षा हो उठी है। वह सब काम वक्त पर मशीन की तरह करती। किन्तु एक ऐसी चुप्पी अपने मस्तिष्क में छिपाये रहती थी कि विनीत होने के बावजूद कुछ कठोर हो गई थी।

और महामाया—महीने में एक दो दिन सांत्वना की सांस लेती और फिर जी भर कर सबको कोसती। विधाता को, जिसने उसे पोता नहीं दिया। रेखा को जिसमें पोता पैदा करने की शक्ति नहीं और हरिकुमार को जो मंत्र-तंत्र शक्ति से पोता पैदा करने के पक्ष में नहीं था।

आखिर फाग आ गया--मोद भरा और मस्त। मशीन की जिन्दगी, तूफान की तरह तेज व्यापारिक जिन्दगी में राजस्थान के शुष्क मजदूरों के फाग गूंज रहे थे। मस्ती भरे—फाग।

और इस दिन हरिकुमार की अनिच्छा होते हुये भी महामाया पोते का वरदान लेने के लिये योग माया के मंदिर के पास रहने वाले एक सयाने के पास रेखा को ले गई। उनके जाने के बाद हरिकुमार ने गहरी सन्तोष की सांस ली। निशि की गहरी याद—अंतरतम में समाये वह अखबार के पन्ने पलटने लगा। सरकार ने अच्छे प्रकाशनों पर पुरस्कार दिये थे--हरि ने देखा किताब तो प्रबोध की भी है, किन्तु जाने क्यों उसका नाम प्रबुद्ध शास्त्री कर दिया है।

वह बाहर आया। क्यारियों पर तितलियां नाच रही थीं। जाने क्यों उदास दिमाग में फिर निशि घूमी और सचमुच सिर उठाया तो बहुत ही पीली, जीर्ण—ऐसी निशि खड़ी थी, जो मौत की घाटी से निकल कर आई हो। सांप जैसे मणी खो देता है उसी तरह उसने

अपना सौंदर्य इस तरह खो दिया था, जैसे सचमुच किसी ने उसे धो डाला हो।

'निशि…'

निशि रो दी। उस उजली धूप में, फूलों के बीच निशि हरिकुमार के कंधे से लगी रो रही थी, जैसे अपने पाप धो रही है। कुछ कहती इससे पूर्व ही दिवानचन्द का कठोर स्वर गूंजा और भयभीत निशि भाग खड़ी हुई।

न कहने पर भी वह सब समझ गया। हिन्दुस्तान जैसे गर्म देशों में जहां फैशन तो अंग्रेजी आ सकते हैं, किन्तु भावना अंग्रेजी नहीं हो सकती, समझ अंग्रेजी नहीं, भले ही जासूसी उपन्यास हो—रोमांटिक कथाकृतियों के बावजूद समझ नहीं आती वहां नाजायज मां बाप का होना कोई बड़ी बात नहीं और निशि तो थी भी मादाम वावेरी का अवतार।

कौमार्य नष्ट होता है—होने दो! एक भूख तो मिटती है। आज उसे न जाने क्यों अपने आप से नफरत हुई, निशि से नफरत हुई और यकायक रेखा के लिये प्यार उमड़ पड़ा। वही रेखा जो अब चुप रहती है। शायद उसने भी मीरा की तरह शरत् को अपना कृष्ण मान लिया है। उसी की पढ़ाई, लिखाई में, समझ बूझ में सारा वक्त काट देती है। कितना बड़ा सहारा है, एक बालक।

किन्तु रेखा वहां नहीं थी। वह एक बार भीतर गया, उसी कमरे में जहां उसने उसे डांटा था और फिर उस कमरे में आया जहां कभी-कभी प्रबोध आकर बैठा रहता था। यकायक उसे प्रबोध से मिलने की इच्छा तीव्र होती गई। वह बाहर आया, और तांगा लेकर सीधा प्रबोध के घर गया। दोपहर का वक्त और प्रबोध सो रहा था। उसकी आंखों में अजीब सी उदासी छाई थी, हरिकुमार का स्वागत करते हुये बोला :

'आओ, मैं भी न जाने क्यों तुम्हारा इन्तजार कर रहा था ?'

'क्या मेरा—'

'शायद तुम्हारा, या किसी और का। पर—' कहकर प्रबोध चुप हो गया। फिर धीरे से बोले, 'क्या कहीं चलने को मन है ?'

'कहां ?'

'कहीं भी—दरअसल मैं यहां से, इस एकाकीपन से ऊब चला हूं। और फिर अब तो छुट्टियां ही हैं। पंजाब मैट्रिक की परीक्षा शुरू हो गई हैं। करीब दो तीन महीने की तो छुट्टी है ही।'

'इतने दिन क्या होगा ?'

'यही मैं सोच रहा हूं। पर आओ तो—कुछ न कुछ सोच ही लेंगे। लेकिन यहां से चलो, क्योंकि एकाकी, रहने से आदमी कुछ परेशान सा हो जाता है। आओ—'

एक घण्टे बाद वे दोनों जमना के किनारें थे। बहुत ही उदास धारा से दूर—कुदसिया बाग के ऐतिहासिक बुर्ज के नीचे फैली हरियाली में दोनों बैठे। दूर तक सन्नाटा सा छाया था, प्रबोध ने कहा—'अब मैं दिल्ली से लौट जाऊंगा। मन करता है कहीं दूर जाऊं.....'

'जा सकोगे।'

प्रबोध ने कहा—'शायद नहीं। लखनऊ तो इसलिये नहीं जाऊंगा कि बहिन ने गृहस्थी बसाली है और मुझे देखकर शायद कोई विघ्न पैदा न हो जाय किन्तु कहीं और जाने को मन जरूर होता है।'

'तो फिर—'

'फिर सोचता हूं—खैर जाने दो। हां, तो घर पर सब ठीक ही हैं ना।'

'लगभग' हरिकुमार ने यकायक उसे पूछा, 'सुनो तुम्हारी किताब पुरस्कृत हुई है।'

'हां--मगर मैं नहीं। अनजाने में यह भूल हो गई है। प्रबुद्ध शास्त्री बहुत बड़े जानें माने व्यक्ति हैं। उन्होंनें ही सरकारी अफसरों पर दवाब डालकर इनाम लिया होगा।'

'गलती से नाम आ गया है।'

'मगर यह तुम भी तो अपने लिये कर सकते हो।'

बहुत फीकी हंसी हंस कर उसने कहा, 'तो उससे क्या होगा, दस सौ पचास रुपये मिलेंगे--बस, और तो नहीं होगा कुछ। खैर हटाओ, रेखा जीजी ठीक हैं?'

'हां!'

हर बार की हां से वह ऊब गया था। उसने कहा—'अच्छा तो उठो।'

'कहां?'

'चलो लौट चलें। दरअसल मेरा मन आजकल कहीं नहीं लगता है। कुछ उड़ता-उड़ता सा नजर आता है। चार सौ रुपये मेरे पास हैं, सोचता हूँ कुछ दिन के लिये अगर किसी पहाड़ी स्थान पर चला जाऊं तो कैसा रहे।'

'सुन्दर—'

'पर लगता है, मैं जा नहीं पाऊंगा।'

हुआ भी ऐसा ही। वह नहीं जा पाया—कुछ थोड़ा बहुत गुजारे लायक काम कर लेता और चुप रहता। रोज अखबारों में पढ़ता कि 'बम टैस्ट हो रहे हैं, जिनका परिणाम घातक होगा और होकर रहेगा। आखिर यह बात सच ही हुई, दिल्ली में इन्फ्लूयेंजा फूट पड़ा। बहुत ही भयानक, बहुत ही तीव्र होकर।

हरिकुमार का सारा परिवार फ्लू में था, दिवानचन्द का सारा परिवार बिस्तर पर था, सिवाय दिवानचन्द को छोड़कर।

शायद प्रबोध को पता भी नहीं लगता अगर वह सहमते हुये दिवानचन्द को नमस्कार न करता तो।

'कहो, तुम्हें तो बुखार नहीं चढ़ा ?'

'क्यों किसी को चढ़ा है क्या ?'

दिवानचन्द की आंखों से टप् टप् आंसू गिर पड़े। प्रबोध समझ गया कि उसे मदद की जरूरत है और वह मदद उसने दी।

हरिकुमार ठीक हुआ, शरत् ठीक हुआ। महामाया पड़ी थी, रेखा पड़ी थी। किन्तु फिर भी रेखा बीमारी में उपचार करती थी, इधर-उधर के काम करती थी। जैसे उसके मर जाने का गम किसी को नहीं होगा। एक रात वह यकायक घबरा गई थी। हरिकुमार, महामाया, शरत्, श्याम कृष्ण सभी तो पड़े थे।

उसने प्रबोध को बुलाकर कहा, 'सुनो, एक काम कर सकोगे।'

'हां।'

'तार देकर किरण को बुला लो। मुझसे यह सब नहीं होता।'

'जीजी मैं जो हूं।'

रेखा ने कुछ झुंझलाहट से कहा—'बेकार की बात मत करो। तुम हो या नहीं, सो मैं जानती हूँ। बोलो कर सकोगे।'

'करूंगा' प्रबोध ने जाते-जाते कहा, 'उसे भी बुला डालो, ताकि वह आते ही पड़ जाय।'

'प्रबोध...'

'झूठ तो नहीं जीजी—' और यकायक उसकी आंखों के आगे अजीब से सपने घूम गये। मगर किरण नहीं आई, सब ठीक हो गये। भिखारी की बात सच हुई, धीरे-धीरे दुःख के बादल फट गये। फ्लू का प्रकोप प्रत्येक शहर में कम नहीं हुआ, किन्तु उस परिवार के सब लोग अच्छे हो गये।

: ११ :

आषाढ बीत रहा था, बहुत ही मद्धिम, परेशान और सूखा होकर किन्तु सब दिन तो एक से नहीं रहते। सावन के साथ-साथ आसमान पर घटायें घिरीं, बिजली चमकी और सारा वातावरण सुखमय हो गया।

झूले पड़ गये। बाजारों में हारमोनियम पर सावन की मल्हार गाने वाले दुकानदारों की आवाजें कर्कश, भोंडी होते हुये भी बहुत ही प्यारी सी लगती थी। तीज से एक दिन पहले हरिकुमार अचानक ही रात के वक्त प्रबोध के पास चला। दूर और पास लड़कियां गा रही थी :

काले पानी में लम्बी खजूर--

बिजली चमचम करें।

उसने सुना और आगे बढ़ गया। जहां प्रबोध रहता था, उसी गली में चार परम्परावश निहालदे कहने वाले लोग बैठे, कुछ भीड़ को आकर्षित किये जा रहे थे :

'चला रे कंवर सुल्तान–पगड़ी तो हवा में उड़ रही जी।' वह खड़ा हो गया। कथा का प्रसंग था—तीज आ रही थी। इस दिन निहालदे के लिये बारह साल खत्म होंगे और वह चम्पे बाग में झूला डालकर सुल्तान का शाम तक इन्तजार करेगी। अगर नहीं आया तो सती हो जायेगी। उसके दिमाग में एक निहालदे नहीं, ऐसी सैंकड़ों निहालदे घूमी, जिनमें निशि, रेखा सब शामिल थीं। औरत का अपना अस्तित्व और है ही क्या—सिर्फ एक पति को लेकर वह इतना करती है और अगर वह भी उससे छिन जाये तो।

किन्तु वह रुका नहीं, सीधा प्रबोध के पास गया जो चुपचाप

धुंधले प्रकाश में लेटा था। उसे आया देख कर बोला, 'आओ, आओ—आज उठ तो पाऊंगा ही नहीं।'

'क्यों ?'

फीकी हंसी के साथ उसने कहा, 'देख नहीं रहे, लेटा हूँ। शायद—'

हरिकुमार अब तक उसका हाथ छू चुका था, जोर से बोला, 'शायद नहीं, तुम्हें बुखार है।'

तब ही नीचे से गाने की आवाज आई, '.....तो रोवे आधी रात सपने में देखी कामनी।'

'ओह, कितना शोर है।'

'शोर ही तो जिन्दगी है। क्या चाहते हो शमशान का सा सन्नाटा हो जाये ?'

'मगर तुम्हें बुखार जो है।'

'और खामोशी की जरूरत है।'

हरिकुमार ने कहा—'यह मैं कब कहता हूँ, हां यह जरूर कि तुम्हें इतना शोर ठीक नहीं रहेगा।'

'रानी की आंख दुखेंगी तो शहर के दिये गुल नहीं होंगे, जनाब। हमें अधिकार की बजाय कर्त्तव्य को देखना होगा।'

'एक बात पूछूं।'

'हां, हां!'

हरिकुमार ने बहुत सकुचाते हुए पूछा—'तुम जो हमेशा कर्त्तव्य की बात करते हो, क्या कर्त्तव्य सचमुच सुखद होता है, या यूं ही ?'

'यूं ही नहीं, इससे बहुत कुछ सुख प्राप्त होता है। अब जैसे एक विवाहित व्यक्ति अगर मन पसन्द पत्नी न पाने के बाद भी उसके प्रति अन्याय नहीं करता तो वास्तविक रूप में एक ऐसा सुख प्राप्त करता है,

जो बहुत कम लोग पाते हैं। क्योंकि·······' वह कह ही रहा था की एक जोर की उबकाई आई और वह उल्टी करने उठा। किन्तु इतना शक्ति हीन हो गया था, कि वहां से उठ नहीं पाया। हरिकुमार ने उसे उठाया, और लिटाते हुए पूछा, 'डाक्टर से दवा ली—'

प्रबोध चुप। हरिकुमार ने कहा—'वाह, हमको नसीहत देते हो और आप क्या करते हो जनाब ?'

'फजीहत—'

'छी : ' हरिकुमार ने कहा, 'बेशर्म भी तुम्हारे जैसा होना कठिन है। पर मैं डाक्टर अभी बुलाकर लाता हूँ।'

'ऐ हे हे—' उसने दामन पकड़ कर कहा, 'कहीं ऐसा कर भी न बैठना। कल सुबह चला जाऊंगा।'

'तुम नहीं जाओगे, सुबह मैं आऊंगा, समझे।'

प्रबोध ने कहा, 'समझ गया आओगे, पर तुम्हें देर तो नहीं हो रही है।'

'ना—'

'ठीक है तब तो चाय पीओगे ना,' कहकर उसने आवाज दी, 'गंगा, ओ गंगा जीजी।'

'यह कौन है ?'

'पड़ोसिन' तब तक गंगा आ गई थी। आते ही बोली, 'क्या भैया चाय पीओगे। दो कप ना, अभी लाती हूँ।'

पांच मिनट में वह चाय ले आई। हरिकुमार चला तो गया किन्तु जाने को मन न था। न जाने कैसी आत्मीयता उससे जुड़ गई थी कि सुबह पांच बजे उठते ही बोला, 'रेखा, मैं अभी जाऊंगा।'

'अभी'

'हां' उसने प्रबोध की बीमारी का हाल बताते हुए कहा--'जानती हो उसने हम सब की जान बचाई थी।'

'तो क्या सख्त बीमार हैं ?'

'भगवान जाने। डाक्टर देखेगा, तो पता लगेगा।'

'मगर इस वक्त डाक्टर—' रेखा ने कहा, 'अभी कौन से डाक्टर आये होंगे जी। जरा नाशता तो कर लो ना।'

बड़ी उद्विग्नता से हरिकुमार ने कहा, 'कमाल है, वह तुम्हें बहन मानता है और तुम हो कि...'

रेखा ने बड़ी कठिनाई से दोनों कोरों से आंसू पोंछे। सच ही तो है—नारी की कहानी तो आंसुओं की ऐसी मूक कथा है जो न छिपाई जा सकती है, और न बताई।

: १२ :

डाक्टर ने घोषित किया, प्रबोध को फ्लू का प्रकोप है और एक सौ पांच बुखार।

'एक सौ पांच बुखार—' हरिकुमार ने उसके गंभीर चेहरे को देखा जिस पर एक शिकन न थी, एक रेखा नहीं थी। उसने कहा—'अब तुम मेरे घर चलोगे।'

'बीमार होकर ?'

'हर्ज क्या है ?'

प्रबोध ने कहा—'मैं अब इरविन अस्पताल जाऊंगा। डाक्टर एक पर्ची लिख दो ना!'

'हां, हां!'

'तो लिखो ना।' और हरिकुमार की इच्छा के बिना उसे इरविन हस्पताल में जगह मिल गई। यह गनीमत थी कि वहां से हरिकुमार का घर कोई खास दूर न था। इसलिये रेखा को मिलने जुलने की खास सुविधा थी।

अस्पताल में जिस धैर्य और शान्ति का परिचय दिया वह वहां की नर्स के लिए भी एक अजीब बात बन गयी। वह न केवल और मरीजों का मनोरंजन करता था, बल्कि दुख सहना भी बतलाता था। बार्ड में एक था रोहतक का जाट—जिसे हमेशा दीर्घ शंका लगी रहती थी और वह चीखता रहता था, 'जमादार—इधर आ।'

नर्स उधर हुई और वे उससे गप करने पहुंच गये। नर्स ने पूछा, 'यह क्या है ?'

'मुझ से पूछ रही हैं ?'

'हां,'

उसने कहा—'यह एक बिस्तर, एक कम्बल, एक चादर, एक मरीज—'

'ओह' उसने तंग आकर कहा, 'मैं पूछती हूं, तुम यहां आये क्यों ?'

'गुनाह है।'

'हां—चलो अपने बिस्तर पर।' और जब बिस्तर पर ले जाकर उसे ताप मापा गया तो नर्स ने कहा—'लेट जाओ बहुत बुखार है।'

'कितना ?'

'१०५ बाबा !'

प्रबोध ने कहा, 'तुमने गलत नापा है, समझीं। किसी और का मुझे बता रही हो—' किन्तु इससे आगे वह न बोल पाया। रात को

बुखार कुछ अधिक हुआ। अनजाने में बड़बड़ाते हुये नर्स ने सुना वह किरण, किरण कहकर चीख रहा है।

सुबह नर्स ने पूछा—'किरण कौन है, जिसे तुम याद किया करते हो। कौन है वह, जो सपने में आई थी ?'

'तुम नहीं जानती, वह सूरज की बेटी है।'

'सूरज की बेटी !'

'अरे हां हां। प्रसाद ने तो उस पर कविता तक लिखी है।' किन्तु नर्स की पैनी आंखों से उसका छिपछिपोवल न छिप सका। उसने रेखा को बताया, रेखा की आंखों में वह अजीब सा स्वप्न घूम उठा। उसने पूछा—'किरण को बुलालें, प्रवोध।'

'क्यों जीजी ?' फिर फीकी सी हंसी हंसकर बोला, 'अच्छा तो तुम उसकी बातों में आ गई। नर्स कहती थी ना—'

'ऐ मिस्टर,' नर्स ने कहा, 'जानते हो मैं तुमको सबसे ज्यादा सुविधा देती हूँ ? मैं चाहूँ तो—'

सचमुच वह चाहे तो लोगों का आवागमन रोक सकती थी। किंतु उसने नहीं रोका। उससे मिलने न जाने कहां कहाँ से लोग आते थे। भगवान की कृपा है और हे राम दोनों आये, साथ में थे प्रबुद्ध शास्त्री। परिचय हुआ और तय हुआ कि जो इनाम मिलेगा वह दोनों आधा २ बांट लेंगे।

'मंजूर—'

हे राम ने अपनी योजना बताई, 'तुम अच्छे हो जाओ मुंशी जी, शास्त्री जी जो अखबार निकालेंगे उसका अंग्रेजी संस्करण तुम्हारे हाथ रहेगा। बस तुम अच्छे हो जाओ।'

'अच्छा तो हूं मैं मैटर यहीं से भेजता रहूंगा।'

'क्या' नर्स ने तिलमिलाते हुये कहा, 'यहां पर मैटर लिखोगे।'

'लिखूंगा तो क्या हुआ। तुम्हें दिखाकर ही लिखूंगा।'

नर्स ने आत्मीयता प्रकट करके कहा, 'नहीं भई तुम मैटर नहीं लिखोगे।'

'आल राइट मैडम—' जाने से पूर्व हेराम ने दो सौ रुपये उसके तकिये के नीचे रख दिये और जाते जाते बोला—'अच्छा तो मुंशी जी।'

'अच्छा !'

रात को फिर तबियत खराब हो गई। किन्तु डाक्टर ने संभाल लिया। सवेरे रक्षा बन्धन था, निशि के साथ साथ रेखा आई और बोली—'जरा हाथ निकालो तो प्रबोध। मैं तुम्हारे राखी बांधने आई हूँ।'

'जरूर, जीजी तुम राखी बांध दो तो आती हुई मौत रुक जायेगी।'

'छी: मौत की बात क्यों कहते हो ?' रेखा ने उसके हाथ में राखी का धागा बांध कर कहा—'लाओ क्या देते हो अपनी इस बहन को ?'

'क्या दूं तुम्हें ?' फिर कुछ देर सोचकर उसने पुकारा—'नर्स मैडम !'

'हां !'

'बहन को क्या दूं ? जीजी ने राखी बांधी है।'

नर्स ने पूछा—'क्यों मुझसे क्यों पूछते हो, क्या मैं बता पाऊंगी ?'

'जरूर बताओगी। ताप बता देती हो। मर्ज बता देती हो—तो यह नहीं बताओगी।'

'मानोगे भी।'

प्रबोध ने कहा—'हुक्म करो, कोशिश करूंगा !'

'तो दो बीस रुपये !'

'धत् तेरी—बस बीस। छी: छी:। जीजी इन्होंने तो बिल्कुल नर्स

वाला काम किया है यह लो तुम दो सौ । एक रुपया उधार रहा ।'

रेखा ने रुपये छुये, और उठाकर तकिये के नीचे रख कर कहा—'अब यह मेरी अमानत है ।'

'अगर किसी ने चुरा ली तो ।'

'किसकी हिम्मत है । भाई चौकीदार बने और बहन की अमानत चुरा ली जाय ।'

उसे नर्स ने बताया कि इस जैसे गंभीर मरीज उसने कम देखे हैं । वह निश्चित रूप से कह सकती है कि अगर कोई किरण है और आ जाय तो उसे आधा आराम हो जाय ।

'सच ।'

'सच नहीं, दो सौ प्रतिशत सच, तुम शायद मनोविज्ञान से परिचित नहीं हो । इसका बहुत ही कठोर और उत्कृष्ट मस्तिष्क है ।

उसी शाम उसने किरण को तार द्वारा लिखा—'परिस्थिति विकट है, शीघ्र चली आओ ।'

वह रात कुछ अजीब सी बीती है । डाक्टर ने कहा—'फ्लू नहीं । अब तो सन्निपात भी हो गया है ।'

'क्या सन्निपात ?' नर्स ने पूछा, 'मगर वह बिल्कुल नहीं बहके ?'

'यह भी तो एक मुसीबत है—शायद ही रात काट पाये ।' मानवीय अनुभूति भी न जाने क्या चीज है । नर्स जिसकी ड्यूटी दस बजे खत्म हो जाती है । उसके सिरहाने ही स्टूल पर बैठी रही । सवेरे यकायक प्रबोध ने आंख खोल कर पुकारा—'जीजी, जीजी, यह ठीक नहीं है । बिल्कुल ठीक नहीं !......जीजी वो देखो—यहां नहीं किरण तुम्हें जुकाम हो सकता है ना ।'

'इधर बैठो—हां—और सुनो.......हम दिल्ली जा रहे हैं, हां दिल्ली...'

'लिखूंगा तो क्या हुआ। तुम्हें दिखाकर ही लिखूंगा।'

नर्स ने आत्मीयता प्रकट करके कहा, 'नहीं भई तुम मैटर नहीं लिखोगे।'

'आल राइट मैडम—' जाने से पूर्व हेराम ने दो सौ रुपये उसके तकिये के नीचे रख दिये और जाते जाते बोला—'अच्छा तो मुंशी जी।'

'अच्छा !'

रात को फिर तबियत खराब हो गई। किन्तु डाक्टर ने संभाल लिया। सवेरे रक्षा बन्धन था, निशि के साथ साथ रेखा आई और बोली—'जरा हाथ निकालो तो प्रबोध। मैं तुम्हारे राखी बांधने आई हूँ।'

'जरूर, जीजी तुम राखी बांध दो तो आती हुई मौत रुक जायेगी।'

'छी: मौत की बात क्यों कहते हो?' रेखा ने उसके हाथ में राखी का धागा बांध कर कहा—'लाओ क्या देते हो अपनी इस बहन को?'

'क्या दूं तुम्हें?' फिर कुछ देर सोचकर उसने पुकारा—'नर्स मैडम!'

'हां!'

'बहन को क्या दूं? जीजी ने राखी बांधी है।'

नर्स नें पूछा—'क्यों मुझसे क्यों पूछते हो, क्या मैं बता पाऊंगी?'

'जरूर बताओगी। ताप बता देती हो। मर्ज बता देती हो—तो यह नहीं बताओगी।'

'मानोगे भी।'

प्रबोध ने कहा—'हुक्म करो, कोशिश करूंगा!'

'तो दो बीस रुपये!'

'धत् तेरी—बस बीस। छी: छी:। जीजी इन्होंने तो बिल्कुल नर्स

वाला काम किया है यह लो तुम दो सौ । एक रुपया उधार रहा ।'

रेखा ने रुपये छुये, और उठाकर तकिये के नीचे रख कर कहा—'अब यह मेरी अमानत है ।'

'अगर किसी ने चुरा ली तो ।'

'किसकी हिम्मत है । भाई चौकीदार बने और बहन की अमानत चुरा ली जाय ।'

उसे नर्स ने बताया कि इस जैसे गंभीर मरीज उसने कम देखे हैं । वह निश्चित रूप से कह सकती है कि अगर कोई किरण है और आ जाय तो उसे आधा आराम हो जाय ।

'सच ।'

'सच नहीं, दो सौ प्रतिशत सच, तुम शायद मनोविज्ञान से परिचित नहीं हो । इसका बहुत ही कठोर और उत्कृष्ट मस्तिष्क है ।

उसी शाम उसने किरण को तार द्वारा लिखा—'परिस्थिति विकट है, शीघ्र चली आओ ।'

वह रात कुछ अजीब सी बीती है । डाक्टर ने कहा—'फ्लू नहीं । अब तो सन्निपात भी हो गया है ।'

'क्या सन्निपात ?' नर्स ने पूछा, 'मगर वह बिल्कुल नहीं बहके ?'

'यह भी तो एक मुसीबत है—शायद ही रात काट पाये ।' मानवीय अनुभूति भी न जाने क्या चीज है । नर्स जिसकी ड्यूटी दस बजे खत्म हो जाती है । उसके सिरहाने ही स्टूल पर बैठी रही । सवेरे यकायक प्रबोध ने आंख खोल कर पुकारा—'जीजी, जीजी, यह ठीक नहीं है । बिल्कुल ठीक नहीं !·······जीजी वो देखो—यहां नहीं किरण तुम्हें जुकाम हो सकता है ना ।'

'इधर बैठो—हां—और सुनो········हम दिल्ली जा रहे हैं, हां दिल्ली···'

अजीब सी चुप्पी के बाद उसने फिर कहा—ठहरो हरिकुमार जी, यह नहीं, हां वह मेरी जीजी है—जीजी। किरण इधर किरण ?' गौमती बहुत गहरी है किरण, वहां न जाओ। वहां मत जाओ किरण, मत जाओ, डूब गई तो।'

नर्स दौड़कर डाक्टर को बुलाकर लाई, उसने आते ही इंजैक्शन लगा दिया, किन्तु उसका बहकना बन्द नहीं हुआ। बेहोशी में एक उल्टी आई। खून आया और फिर वह यकायक उठ बैठी। हरिकुमार आ चुका था, उसे देखकर नर्स ने कहा—'बाहर बैठिये आप।'

वह अब भी बहक रहा था—'तू मेरी बहन नहीं हो सकती। तूने चोरी की है, चोरी''''क्या, नहीं नहीं मैं तेरा सौतेला भाई नहीं हूँ। अगर भाई भी नहीं हूँ—कुछ नहीं हूँ।'

'''''ऐ नर्स मैडम सुनो। क्या दूं, बहन ने राखी बांधी है—क्या ? धत् तेरी—की भी तो नर्स जैसी बात ! धत्''''ठहरो ठहरो—किरण को तार मत दो। क्या पता रास्ते मैं ही कुछ हो जाये। कुछ भी तो हो सकता है। नहीं नहीं अकेले मत जाने दो'''

'खबरदार जो अकेली गई। तुम्हें डर नहीं लगता हमेशा ही।' फिर एक बार जोर से उल्टी गई, खून आया और वह कुछ चीखे बगैर चुप पड़ा रहा। नर्स को लगा कि उसे होश आ गया है, इसलिये वह किरण का नाम नहीं ले रहा है।''''प्रबोध ने पुकारा—'नर्स''''' और बिना होश-हवाश आये उल्टा पड़ गया।

क्षितिज का अन्तिम तारा यकायक टूट पड़ा—और हरिकुमार ने आकर देखा नर्स सिसकियों से सारे कमरे को गुंजाती उसे काला कम्बल उड़ा रही थी। वह चीख पड़ा—'प्रबोध।'

: १३ :

किन्तु प्रबोध जा चुका था। रेखा ने सुना—धक् से खड़ी की खड़ी रह गई। उसने निश्चय किया कम से कम एक बार जरूर वह अपने इस राखी बंधा भाई की सूरत देखेगी, किन्तु जैसे ही चलने लगी, महामाया ने गरज कर कहा—'सुनो, तुम नहीं जा सकती।'

'मैं अम्मां जी।'

'हां तुम। मैं दीवार से बातें नहीं कर रही हूँ। वाह चलो बैठो।'

'मगर अम्मां जी!'

'मां हर्ज क्या है?' हरिकुमार ने कहा ही था कि महामाया जोर से बरस पड़ी, 'वाह कोई हर्ज नहीं है। तू जाता है जा, यह नहीं जायेगी'।

हरिकुमार चुप हो गया। उसने महामाया के जाने के बाद धीरे से उसके कान में कहा—'तुम, मां के जाने के बाद आ जाना। मां तो मंदिर जायेगी ना।'

वह कह कर चला गया, किन्तु जाने कैसे महामाया भांप गई। वह नहीं गई और प्रबोध को अन्तिम रूप में देखने की अभिलाषा ऐसी दृढ हो गई थी कि वह चुप-चुप निकलने लगी।

ठहरो, महामाया ने रोका। नहीं रुकी तो महामाया ने उसे पकड़ कर कहा—'अजी ओ रानी जी। जा तो रही हो मगर यह जो डोरा गले में बंध रहा है, इसका बंधन भी याद है।'

. 'याद है।' उसने वह अजीब सा डोरा गले से उतार फेंका और चलने लगी, किन्तु महामाया उससे ज्यादा सशक्त थी। घूंसे और लातों से उसकी ऐसी पूजा मरम्मत की कि असल महामाया का रूप दृष्टिगोचर हो गया। एक बार तो क्रोध से उसके दांत भिंच गये दिमाग में आया कि वह भी उसे पीटना शुरू करें, परन्तु न जाने क्यों उसके हाथ रुक गये। महामाया से जब पीट चुकी तो वह चुपचाप भीतर चली गई और एक कोने में खड़ी उस प्रबोध की याद करने लगी जो अब कंधों के रथ पर सवार होकर असमय ही चला जायेगा।

सचमुच बड़ी ही प्रतिष्ठा प्रबोध ने प्राप्त कर ली थी नर्स जिसे एकाकी समझ रही थी आज वह साठ व्यक्तियों के साथ शमशान जा रहा था। उसकी शव-यात्रा में प्रकाशक हे राम और भगवान की कृपा की युगल जोड़ी थी। पुरस्कार आधा बांट लेने वाले प्रबुद्ध शास्त्री थे।

गंगा मिस्त्री थे, उसके बच्चे थे। रामधन और केवल कम्पोजिटर थे और ऐसे व्यक्ति थे जो बिना किसी भय के सिर्फ श्रद्धावश उसके साथ आये थें, क्योंकि हर एक पर कोई न कोई एहसान जरूर था। हरिकुमार को लगा जैसे उसका बहुत बड़ा सम्बन्धी जा रहा हो किन्तु जाते को रोक कौन सकता है।

लकड़ी धधकीं, चिता उठी और लोग घर लौट पड़े। बहुत ही थका मांदा हरिकुमार घर आया तो महामाया ने बिना बताये उसे खाना खिला दिया, किन्तु उसे जब यह पता लगा तो सचमुच उसके पांव कांप उठे। पहली बार मां के प्रति उसका आक्रोश जगा था, और वह भी इतनी बुरी तरह उसे लगा जैसे मां नहीं डायन हो। वह अन्दर गया, रेखा एक तरफ खाट पर मुंह ढांपे पड़ी थी। महामाया बाहर से सफाई दे रही थी कि उसने उसे न भेजकर कितना अच्छा किया है कितना अच्छा""।

हरिकुमार ने बड़े चाव से किन्तु कुछ लज्जा से कपड़ा खींच कर कहा—'रेखा उठो तो।'

रेखा चुपचाप खड़ी हो गई किन्तु उसकी इतनी शांत, इतनी उदास सूरत, उस पर पड़े हुये नील हरिकुमार देख कर ही सहम गया। उसने बहुत ही दुलार से रेखा के सब मार के दागों को छुआ और फिर बोला—'कुछ नहीं कहोगी रेखा, कुछ भी नहीं कहोगी।'

तब ही शरत् दौड़ता हुआ आया। उसके हाथ में चिट्ठी थी, आते ही बोला, 'मामा जी देखो तो प्रबोध मामा की चिट्ठी आई है।' 'देखूं तो—' शरत् ने चिट्ठी पढ़ी और पढ़कर रेखा के हाथ में दे दी। इलाहाबाद के एक प्रकाशक ने उसकी प्रेषित रचना पर अनुवेध पत्र भेजा था। रेखा पत्र पढ़ते ही जोर से रो पड़ी। हरिकुमार चुपचाप बाहर आ गया। मां रसोई में आटा गूंथ रही थी, उसने उसे देखा और फिर साईकिल उठाकर अपने आफिस की ओर दौड़ पड़ा। उसने निश्चय किया कि वह अब दिल्ली नहीं रहेगा, महामाया के साथ नहीं रहेगा। क्योंकि रेखा का उत्तरदायित्व सिर्फ उसी पर है। वहां जाकर उसने तय कर लिया और फिर एक अपराधी की तरह रेखा के नजदीक आकर बोला—'रेखा, मैं बहुत लज्जित हूं। हम दो दिन बाद यहां से चल देंगे, पर क्या तुम खाना नहीं खा सकतीं ?'

रेखा यकायक उसके पांवों में झुक गई, बोली—'आज मुझसे खाना खाने को न कहो, आज नहीं खा पाऊंगी।'

'मगर कब तक ?'

'खालो रेखा।'

प्रत्युत्तर में रेखा बुरी तरह रो दी। अगले दिन घर को इसी उदास वातावरण में छोड़कर वह गढ़मुक्तेश्वर में प्रबोध का अस्थि-प्रवाह करने चला गया।

सूरज कम प्रचण्ड नहीं था। बहुत ही चमकदार, किन्तु मलीन दिन था और गढ़ के तीर पर फैली खामोशी बहुत ही भयानक दीख

रही थी। अस्थियां प्रवाह करते करते उसका मन रो दिया। किन्तु आंखों से आंसू बह जाने के बाद एक ऐसा प्रकाश खिल उठा जिसमें प्रबोध बिल्कुल जिन्दा लगता था।

जैसे अब भी उससे बात कर रहा हो—'''''एक भावुक पत्नि को नालायक करार देता है और दूसरा भावुक आजादी की लड़ाई में सीना खोलकर खड़ा हो जाता है। ''''हर वह इन्सान जो इन्सान कहलाने का हक रखता है, उसके सीने में एक दिल होता है। एक भावना होती है, एक प्रेरणा—'

आंसू फिर उतर आये। उसने गंगाजल चुल्लू से पिया कुछ प्रतिज्ञा सी की और दूर फैले तीर को देखा। कितना विस्तृत था गंगा का पाट''''

: १४ :

उसी सुबह एक तांगा आकर रुका और किरण ने बोर्ड पढ़कर अटैची उतारी। वह बहुत ही भयभीत सी भीतर घुसी।

महामाया थी नहीं, जाने उसे क्या सूझा उसने जोर से पुकारा—

'जीजी'''

'ओ' रेखा आई तो उसने उसे सिर से पांव तक देखा। विशेषत: उसकी मांग—जब उसे सिन्दूर अचित देखा तो धीरे से बोली—'सब ठीक तो है जीजी।'

'हां!'

'मौसी जी कहां हैं?'

'बाहर।'

'और शरत् ।'

'स्कूल गया है ।' 'रेखा ने कुछ क्षण बाद उसे बताया कि प्रबोध अब नहीं रहा ।

किरण ने सफाई दी, पोस्टल हड़ताल द्वारा तार उसे कल ही मिला है, वह आज आ गई । इतनी स्वाभाविकता से कि स्वयं रेखा आश्चर्य चकित रह गई । किन्तु जैसे ही उसने कुछ दूर होकर कमरे में प्रवेश किया—देखा किरण फफक कर रो रही थी ।

बाहर से भोला ने कहा—'जो है सो···प्रबोध बाबू का सामान आया है ।'

'सामान है ।' रेखा ने बाहर आकर देखा सिर्फ एक अटैची थी, बहुत छोटी और एक बिस्तर था । जिज्ञासा वश उसने अटैची खोल डाली । उसमें कुछ कपड़े थे, कुछ छपी किताबें थीं और एक प्रबोध का चित्र ।

रेखा ने चित्र उठाकर कहा—'यह मैं रखूंगी । मैं प्रबोध को जिन्दा रखूंगी ।'

'जीजी' किरण ने डांटते हुये कहा—'क्या पागलपन करती हो ? लोग तुम्हें जिन्दा रहने देंगे । वैसे ही तुम्हारे पर बड़ी-बड़ी मेहरबानियां की है लोगों ने ।' रेखा ने बड़ी लालसा से चित्र उठाया और रख दिया । यकायक उसने किताब उठाकर कहा—'इसे तो कोई नहीं रोक सकता, इसे रखूंगी ।' तब ही बाहर से महामाया की आवाज सुनाई दी । किरण ने बाहर जाकर पाँव छुये, किन्तु आशीर्वाद का एक स्वर उनके मुंह से न निकला ।

किरण जैसी आत्माभिमानी लड़की इतना अपमान कैसे सहती, वह रेखा के नजदीक आकर बोली, 'जीजी, क्या मैं आज लौट सकती

हूँ। जिसके लिये आई थी.....' इसके बाद दो आंसू उसके चेहरे पर आये और लुढक पड़े।

'क्यों किरण ?'

कुछ उबाल सा खाकर किरण ने कहा, 'बहस मत करो जीजी। मैं आज ही लौट जाना चाहती हूं।'

'उनसे नहीं मिलेगी।'

'नहीं' किन्तु जब तक गाड़ी का समय हुआ तो हरिकुमार आ चुका था। उसने उसे रोका नहीं—प्रबोध की अटैची को सौंप कर पुनः उसे गाड़ी में बिठला आया। गाड़ी चलने से पूर्व किरण ने कहा, 'जीजा जी, कुछ भी कीजिये, पर मेरी जीजी को बचा लीजिये। अगर वह मर गई तो...'

हरिकुमार ने उसके मुंह पर हाथ रखकर कहा—'यकीन मानों ऐसा नहीं होगा।'

धीरे-धीरे गाड़ी रेंगने लगी। किरण का उदास, अश्रुमय चेहरा धीरे-धीरे गायब हो गया। हरिकुमार ने जाती हुई गाड़ी को देखा और न जाने फिर किस भय से एक दम घर की ओर दौड़ पड़ा।

: उपसंहार :

रेखा आगरे जा रही है यह उसे महामाया की जबानी ही मालूम हुआ।

महामाया ने कहा—'बहू जा तो रही हो। चिट्ठी विट्ठी डालती रहना, हाँ।' रेखा चुप रही। कोई शब्द उसके मुंह से निकल नहीं रहा था।

साथ वाले कमरे से शरत् निकला। वह तेजी से उसकी टांगों से लिपट कर बोला—'मैं तुम्हें नहीं जाने दूंगा।'

किन्तु आज न जाने रेखा को जाने हुआ क्या था? उसका हर जवाब एक चुप था। जुबान का जैसे ताला लग गया था। आंखें, बरोनियां, पलकें, माथा एक बुत की तरह सिमटने लगा था।

उसने पूछा—'तुम जा रही हो ना मामी।'

वह चुप रही।

'न जाओ....' कितना दर्द कितनी टीस इस शब्द में थी यह कहना व्यर्थ है। मगर रेखा फिर भी चुप रही। उसने तेजी से उसे अपने से अलग किया, किन्तु अभी वह कमरे में घुस नहीं पाई थी कि शरत् ने घड़ी को जमीन पर दे मारा। कील कील बिखर गई।

एक घण्टा बीत गया।

भोला कीलें चुग कर लाया और सहमता सा बोला—'जो है सो, मालकिन। हम यहां नहीं रहने के। बताये देते हैं....'

'अच्छा—' पीछे से हरिकुमार ने कहा—'तुम दोनों यहां हो।

भोला जरा तुम सामान तो रक्खो गाड़ी में। और रेखा—क्या गाड़ी निकाल देनें का इरादा है? क्या तुम्हें चलना नहीं है?'

'सचमुच चलना होगा?'

'क्या...'

रेखा ने झुके सिर से ही कहा: 'पर यह भी सोचा है कि लोग क्या कहेंगे? हरिकुमार ने कहा—'क्या कहेंगे। कोई चोरी कर रहे हैं क्या? लहर में से लहर अलग होती है और शाख में शाख....'

'हां, हां...!'

'क्या हां हां—अब तक मैंने जप्त किया है। बहुत जप्त किया है, मगर कब तक तुम्हें जानवरों की तरह दिन काटते देखूंगा, बताओ तो!'

'बताऊं?'

'हां—'

'तो सुनो मां बाप की मार कभी किसी को नहीं लगती और बाद आने से कोई नदी में स्नान करना नहीं छोड़ देता है अम्मां जी जैसी हैं हैं तो हमारी। लोकलाज की फिक्र तुम न करो—मैं जरूर करूंगी...'

'रेखा यह सब....'

दो गज दूर खड़ा भोला शायद सबसे अधिक उत्सुक था। तेजी से बोला—जो है सो मालिकन ठीक कहती हैं। मैं अभी उस अहमक गाड़ीवान को बिदा करता हूँ कि मालकिन नहीं जा रही है।' और बिना किसी पशोपेश के वह फूलों की क्यारी फांदता हुआ दृष्टि से ओजल हो गया। किन्तु एक क्षण बाद ही ठिठक कर खड़ा रह गया। जिन्दगी में पहली बार महामाया को वह पराजित देख रहा था। महामाया सब कुछ भूल कर रेखा को भुजाओं में समेटे सोच रही थी कि आज की हार ही उसकी सबसे बड़ी जीत है। आंसुओं की धार बह रही थी। रेखा के कपोल भीग रहे थे और महामाया के मस्तिष्क से भ्रम जाल हट रहा था। बरसों का जादू नफरत और दंभ का जाल, नील और शरत् के प्रति उपेक्षा का आना बाना जाने कब का आकार-हीन हो चुका था।

❀ समाप्त ❀